ऐं नम यथार्थवादिने परमात्मने ।

॥ श्री आत्मानद-कमल-दान-प्रेम-रामचन्द्र-भुवनभानुसूरि-सद्‌गुरुभ्यो नम ॥

मीमांसक

न्याय विशारद आचार्य श्रीमद्

विजय भुवन भानु सूरीश्वरजी महाराज साहब के शिष्य

मुनि श्री भुवनसुन्दर विजयजी

सशोधक एव मार्गदर्शक :

नव्य न्याय के प्रखर विद्वान्

मुनिराज श्री जयसुन्दर विजयजी महाराज

सम्पादक :

कपूरचन्द जैन

भायलापुरा, अस्पताल के पीछे

हिन्डौन सिटी, (जि० सवाई माधोपुर) राजस्थान

प्रकाशक :
दिव्य दर्शन ट्रस्ट
बम्बई—४

प्रथम संस्करण १०००
१९८३
मूल्य . १०) रु०

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
(१) कपूरचन्द जैन
मायलापुरा, अस्पताल के पीछे
हिण्डौन सिटी (सवाई माधोपुर) राज०
(२) मंत्री श्री संभवनाथ श्वे० जैन मन्दिर
ओसवाल मोहल्ला
मदनगंज—किशनगढ़
(जि० अजमेर) राज०

मुद्रक
पाँचूलालजी जैन
कमल प्रिन्टर्स
मदनगंज—किशनगढ़ (राज०)
फोन : ८३

वि ू ी

सम्पादकीय	कपूरचन्द जैन	[प्रथम]
मीमासकीय	मुनि भुवनसुन्दर विजयजी	[द्वितीय]
पुरोवचन	मुनि जयसुन्दर विजयजी	[तृतीय]
दो शब्द	मुनि गुणसुन्दर विजयजी	[चतुर्थ]

१	प्राक्कथन	१
२	तीर्थङ्करो का जन्म महोत्सव	७
३	शासन रक्षक देव-देविया	११
४	तीर्थङ्करो की माता के गर्भ मे भी पूजनीयता	१७
५	तीर्थङ्कर के बारह गुण	२२
६	श्री ऋषभदेव का निर्वाण और पावन दाढा	२६
७	श्री अष्टापद गिरि पर जिन मन्दिर	२९
८	पूर्वाचार्यो का महान उपकार	३६
९	आर्द्रकुमार और जिन प्रतिमा	४१
१०	जरासध और कृष्ण के बीच युद्ध	४५
११	वैशाली मे श्री मुनिसुव्रत स्वामी का स्तूप	४८
१२	आर्य श्री शय्यभवसूरि और जिन प्रतिमा	५१
१३	परमात्मा श्री नेमिनाथ व सहार	५४
१४	श्री पार्श्वनाथजी को वैराग्य	५७
१५	प्रतिमा से वैराग्य का उपदेश	६०
१६	अरिहत पर अभक्ति एव पूर्वाचार्यो पर अबहुमान	६२
१७	अबड सन्यासी और सम्यग्दर्शन	६५
१८	दशपूर्वधर श्री वज्रस्वामी के विषय मे पक्षपात	६९
१९	जैन धर्म और आडम्बर	७३
२०	नमो बभीए लिवीए	७८
२१	चैत्य यानी जिनमन्दिर या जिनप्रतिमा	८१

२२	एक हास्यास्पद कल्पना	८१
२३	लब्धिनिधान श्री गौतम स्वामी	९७
२४	स्याद्वाद सिद्धान्त मे हिंसा एव अहिंसा	१०२
२५	श्री भद्रबाहु स्वामी और उवसग्गहर स्तोत्र	१०९
२६	जैन धर्म मे सम्यक् श्रद्धा की व्यापकता	११३
२७	अनुचित खुशामद	१२१
२८	राजा सम्प्रति के साथ अन्याय	१२८
२९	अवति सुकुमाल और जिनमन्दिर	१३५
३०	पूज्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण	१३८
३१	मथुरा के ककाली टीले की खुदाई	१४२
३२	भक्तामर और कल्याण मदिर स्तोत्र	१४७
३३	जैन धर्म मे मूर्तिपूजा और प्राचीन शिलालेख	१५२
३४	स्थानकपथी समाज मे इतिहास की कमी	१५७
३५	परिशिष्ट—मूर्तिपूजा मे शास्त्रो की सम्मति	१६२

युगादिदेव श्री आदीश्वर भगवान
देलवाडा [माउन्ट आबू]

भा भी

काच के घर मे रहने वाला जब अन्य के फौलादी महल पर पत्थर उठाता है, तब वह स्वय को सुरक्षित समझने की बडी भूल करता है। ठीक इसी प्रकार मूर्तिपूजा जैसे शाश्वत जैन आचार के सामने पत्थर फेंकने की अनुचित चेष्टा स्थानकवासी सम्प्रदाय के अग्रणी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने की है।

आचार्य श्री ने "जैन धर्म का मौलिक इतिहास खड १ और २" लिखकर आगम शास्त्रो, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य, पुरातत्त्व सामग्री, विद्यमान हजारो जैन तीर्थों और लाखो जिन मूर्तियो को झूठा करने का दुस्साहस किया है। जिससे जैन समाज को बहुत आशा और अपेक्षा है ऐसे विद्वान् डा० नरेन्द्र भानावत भी ऐसी निम्न कक्षा की पुस्तक छपवाने मे साथ-सहकार देते हैं तब खेद होता है।

१०८ से भी अधिक शिष्यो के गुरु एव १०८ वर्धमान तप आयबील की ओली के आराधक न्याय विशारद् पूज्य आचार्यश्री विजय भुवन भानुसूरिजी महाराज साहब के शिष्यरत्न मुनिराजश्री भुवन सुन्दर विजयजी महाराज साहब ने आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज द्वारा लिखित "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" जो सत्य तथ्य से रहित होने के कारण सर्वथा अमौलिक और कल्पित है, पर सुन्दर मीमासा-टीका रचकर प्रबुद्ध जैन समाज के सामने रेड लाईट दिखायी है, जो

अत्यन्त स्तुत्य है। "मूर्तिपूजा आगमिक है" ऐसा परिशिष्ट जोडकर मुनिश्री ने मीमासा को प्रामाणित भी किया है।

प्राचीन साक्ष्य उपलब्ध होते हुए भी मूर्तिपूजा जैसे विषय को विवादास्पद बनाये रखना अशोभनीय कृत्य है। आचार्य श्री द्वारा रचित इतिहास पुरातत्त्व और शोध के विद्यार्थियो को मार्ग दर्शन देने मे बिल्कुल असमर्थ है। इसको जैन धर्म का इतिहास कैसे कहा जा सकता है?

जैन शास्त्रो मे मूर्तिपूजा के विषय मे हजारो-लाखो उल्लेख मौजूद हैं। "प्रश्न व्याकरण" नामक आगम सूत्र मे चैत्य यानी जिन मन्दिर की वैयावच्च-भक्ति कर्म निर्जरा का कारण है ऐसा कहा है, यथा—

अत्यन्त बाल दुब्बल, गिलाण वुड्ढ सवंक।
कुलगण सघ चेइयट्ठे च णिज्जरट्ठी॥

भावार्थ—अति बाल, दुर्बल, ग्लान, वृद्ध, तपस्वी, कुल-गण (साधु समुदाय) चतुर्विध सघ और चैत्य यानी जिन मन्दिर-जिन प्रतिमा की वैयावच्च (सेवा-भक्ति) निर्जरा (कर्मक्षय) कारक होती है।

व्यवहार सूत्र मे यावत् जिनप्रतिमा के समक्ष भी पाप की आलोचना करने को कहा है, यथा—

जत्थेव सम्ममृचियाइ चेइयाई पासिज्जा।
कप्प सेसस्स सतिए आलोइत्तए वा॥

भावार्थ·—आचार्य आदि बहुश्रुत गीतार्थ का सयोग न मिले तो "चेइया" यानी जिन प्रतिमा के समक्ष जाकर आलोचना (-पाप को प्रगट) करनी चाहिए।

१० पूर्वधर महर्षि तत्त्वार्थ सूत्र रचयिता भगवान श्री उमास्वाति महाराज "तत्त्वार्थ सूत्र कारिका" मे लिखते है कि—

अभ्यर्चनादर्हता मन प्रसादस्तत समाधिश्च ।
तस्मादपि नि.श्रेयसमतो हि तत्पूजन न्याय्यम् ॥

अर्थात्—श्री अरिहत परमात्मा की अभ्यर्चना करने से मन की प्रसन्नता, मन के प्रसाद से समाधि और समाधि से नि श्रेयस मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिये सभी मुमुक्षु आत्माओ को अरिहत की पूजा अवश्य करनी चाहिए, यह न्याय सगत एव उचित है।

शास्त्रो मे इतनी स्पष्ट बात होते हुए भी आचार्य श्री ने स्वय को अज्ञान ही रखना चाहा है। उनके द्वारा रचित इतिहास की सबसे निर्बल कडी यह रही है कि—उन्होने सारे इतिहास मे कहीं भी "चैत्य" (यानी जिनमन्दिर या जिन प्रतिमा) शब्द का शास्त्र या कोष—व्याकरण से अर्थ ही नही किया है। फिर भी उन्होने "चैत्यवास" आदि की चर्चा चलायी है, जो सर्वथा निरर्थक ही है।

मूर्तिपूजा मे आडम्बर एव हिंसा कहने वाले ये लोग स्वय भारी आडम्बर रचते और अपने गुरुओ के पगलिया एव स्मृति मन्दिर आदि बनवाने की हिंसा भी करते हैं। अपनी तस्वीर छपवाकर और बटवाकर ये गृहस्थो के घर मे भी अपना स्थान सुरक्षित रखने लगे हैं। तीर्थङ्कर भगवान के जन्म कल्याणक आदि महोत्सवो को ठाठ से मनवाने मे आडम्बर मानने वाले ये मुनिगण स्वय की जन्म जयति दिल और दिमाग पूर्वक बडे आडम्बर के साथ मनवाते हैं, स्वय की तस्वीर युक्त बडी बडी पत्रिकाएँ छपवाते हैं, गुरुके जन्म दिन पर हजारो लोग इकट्ठे होते हैं, सरस माल मिलता है और मौज मजा उडाते हैं। मूर्तिपूजा विरोधी ये लोग स्वय के गुरु की तस्वीर वाले लोकेट और चादी के सिक्के आदि भी बाटते हैं, निज गुरु को निर्ग्रंथ परम्परा के विरुद्ध

हजारो रुपयो की थैली अर्पण की जाती है। गुरु के नाम पर हजारो भक्तो के लिये सरस भोजन आदि के आरम्भ-समारम्भ रूप महा हिंसा, वे भक्त नियम बद्ध न होने से रात्रि भोजन का पाप एव ठाठ-आडम्बर सब कुछ होता है, सिर्फ भगवान महावीर का नाम, भगवान महावीर की आज्ञा और भगवान महावीर की प्रतिमा-तस्वीर ही कही नही दिखाई देती। अन्य के आगम कथित शास्त्रीय धर्म अनुष्ठानो को आडम्बर और हिंसा कहने वालो के लिये यह सब अत्यत लज्जास्पद है।

आचार्य श्री से यही प्रार्थना है कि आगे शायद वे "जैनधर्म का मौलिक इतिहास-खड-३" लिखेंगे, तब सत्य लिखे जिससे साम्प्रदायिक द्वेष आदि बढे नही और समय एव सम्पत्ति का दुरुपयोग न होवे।

"कल्पित इतिहास से सावधान" नामक इस मीमासा के लिये नव्यन्याय के प्रखर विद्वान् मुनिराज श्री जयसुन्दर विजयजी महाराज ने "पुरोवचन" एव विद्वान् मुनिराज श्री गुणसुन्दर विजयजी महाराज ने "दो शब्द" लिख दिये हैं, जिनका योगदान कभी भी भुलाया नही जा सकता।

पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय विक्रमसूरिजी महाराज साहब और पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरिजी महाराज साहब का मेरे पर विशेष उपकार और कृपादृष्टि रही है, जिसके कारण ही मेरी तबियत ठीक न होते हुए भी प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन कार्य मैं कर सका हू।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन सघको विनती है कि पूज्य आचार्य श्री विजयानन्दसूरिजी (आत्मारामजी महाराज) लिखित "सम्यक्त्व शल्योद्धार", पूज्य आचार्य श्री लब्धिसूरीश्वरजी महाराज रचित

"मूर्तिमडन", इतिहासज्ञ मुनिराज श्री ज्ञानसुन्दर विजयजी महाराज रचित "मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास", पूज्य पन्यास प्रवर श्री भद्रकर विजयजी गणि महाराज रचित "प्रतिमा पूजन" आदि पुस्तको का प्रचार प्रसार करना-करवाना अत्यन्त आवश्यक है।

मुनिराज श्री भुवनसुन्दर विजयजी महाराज द्वारा लिखित इस मीमासा पुस्तक द्वारा भविकजन मूर्तिपूजा विषयक सत्य मार्गदर्शन पावेंगे यही आशा है। इस पुस्तक के मुद्रण मे दिव्य दर्शन ट्रस्ट एव श्वेताम्बर जैन मूर्तिपूजक सघ [मदनगज] का सराहनीय द्रव्य-योग-दान रहा है, जिसका मैं अत्यत आभारी हूं। पुस्तक मे रही त्रुटियो की सब जिम्मेदारी मेरी है।

पाठकगण इसको सादर स्वीकार करेंगे और सत्य के नजदीक आयेंगे यह आशा करता हू। पाठको से निवेदन है कि इस पुस्तक पर जो भी आपकी राय हो वह निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करे।

पता :—
भायलापुरा
अस्पताल के पीछे
हिन्डौन सिटी
[जि० सवाईमाधोपुर]
(राज०)

कपूरचन्द
दि० ११-१०-१९८३
आसोज सुदी पचमी

मो ां ोय

लोहामडी आगरा से छपी स्वाध्याय की किताब "मगलवाणी" जिसका सकलन स्थानकमार्गी अखिलेश मुनि ने किया है, इस किताब के ग्यारह सस्करण द्वारा आज तक जिसकी ६० हजार से भी ज्यादा प्रतियाँ मुद्रित हो चुकी है। इस किताब मे "बृहद् शाति" नामक स्तोत्र को सक्षिप्त करके छपवाया गया है। यानी मूर्तिपूजा समर्थक पाठो को आगे पीछे से हटाकर "बृहद् शाति" को सक्षिप्त कर दिया है।

स्थानकमार्गी अमोलक ऋषि ने उनके माने हुए ३२ आगमो का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री राजप्रश्नीय सूत्र मे देवता द्वारा जिन प्रतिमा पूजन का वर्णन आया है, वहाँ धूप देने के विषय मे मूलपाठ यह है कि—

"धूव दाउरा जिणवराण"

टीका—धूप दत्वा जिनवरेभ्य.।

पार्श्वचन्द्र सूरिकृत टब्बा—धूप दीधु जिनराज ने।

लोकागच्छियो की मान्यता—धूप दिया जिन भगवान को।

किन्तु स्थानकपथी अमोलक ऋषि ने श्री राजप्रश्नीय सूत्र कथित पाठ को परिवर्तन करके लिख दिया है कि—

"धूव दाउरा पडिमाण"

और अर्थ किया—"धूप दिया प्रतिमा को।" फिर प्रतिमा का अर्थ जिनप्रतिमा न करके कामदेव की प्रतिमा कर दिया है। मूल

शास्त्रो में और उनके भाषान्तर मे इन महाशय ने अनेक स्थलपर उनकी मान्यता के अनुकूल परिवर्तन किये हैं तथा जी चाहा मनमाना अर्थ किया है, फिर भी पूर्वाचार्यों को झूठा करते हुए वे "शास्त्रोद्धार मीमांसा" नामक पुस्तक मे लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ श्री जैन धर्म प्रचारार्थ श्री महावीर स्वामीजी के निर्वाण के १२४२ वर्ष मे शीलांगाचार्य ने आचारांग और सूयगडांग की टीका बनाई, १५९० वर्ष पीछे अभयदेवसूरि ने स्थानांग से विपाक पर्यन्त ९ अंग की टीका बनाई, इसके बाद मलयगिरि आचार्य ने राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, पन्नवणा चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्य-प्रज्ञप्ति, व्यवहार और नदीजी इन ७ सूत्र की टीका बनाई, चन्द्रसूरिजी ने निरयावली का पंचक की टीका बनाई, ऐसे ही अभयदेवसूरि के शिष्य मल्लधारी हेमचन्द्राचार्य ने अनुयोगद्वार की टीका बनाई, क्षेमकीर्तिजी ने बृहत्कल्प की टीका की, शांतिसूरिजी ने श्री उत्तराध्ययनजी की वृत्ति–टीका–भाष्य–चूर्णिका–निर्युक्ति वगैरह सहित सविस्तार बनाया। इन टीकाकारो ने अनेक स्थान मूल सूत्र की अपेक्षा रहित व वर्तमान मे स्वत की प्रवृत्ति को पुष्ट करने जैसे मन' कल्पित अर्थ भर दिये। ☼ ☼ ☼

स्थानकवासी महा पण्डित श्रीमान् रतनलाल जी डोशी (शैलाना वाले) ने "जैनागम विरुद्ध मूर्तिपूजा—खड—१" नामक पुस्तक मे चारण मुनियो का नन्दीश्वर आदि द्वीप मे तीर्थयात्रा हेतु जाने को सैर-सपाटा बताया है। यथा—

☼ ☼ ☼ हमारे विचार से [चारणमुनिका] वहा जाने का मुख्य कारण नवन वन की सैर करने का ही हो सकता है, क्योकि यह भी एक छद्मस्थता की पलटती हुई चञ्चल विचार धारा का परिणाम है। ☼ ☼ ☼

प्राचीन आचार्यों के प्रति अश्रद्धा व्यक्त करते हुए स्थानक-वासी समाज के कर्णधार आचार्य हस्तीमल जी "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" मे लिखते हैं कि—

❋❋❋ इस प्रकार बहुत-सी चमत्कारिक रूप से चित्रित घटनाओ को भी इस ग्रथ मे समाविष्ट नहीं किया गया है। मध्ययुगीन अनेक विद्वान ग्रन्थकारो ने सिद्धसेन प्रभृति कतिपय प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र को आलेखन करते हुए उनके जीवन की कुछ ऐसी चमत्कार पूर्ण घटनाओ का उल्लेख किया है, जिन पर आज के युग के अधिकाश चिन्तक किसी भी दशा मे विश्वास करने को उद्यत नहीं होते। ❋❋❋

यही आचार्य अपनी "सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी" किताब के पृ० १८ पर लिखते हैं कि—

❋❋❋ कुछ लोग कहते हैं कि—भरतजी ने मरीचि को होने वाला तीर्थंकर जानकर वन्दन किया, ऐसा टीका मे आता है। ठीक है, यह बात कथा मे है पर शास्त्र मे नहीं होने से प्रमाण कोटि मे नहीं मानी जाती। ❋❋❋

स्थानकपथी मत प्रवर्तक लोकाशाह के विषय मे स्थानकवासी पण्डित श्रीमान् वाडीलाल मोतीलाल शाह—अपनी "ऐतिहासिक नोंध" मे लिखते हैं कि—मैं इस बात को अगीकार करता हू कि मुझे मिली हुई लोकाशाह विषयक हकीकतो पर मुझे विश्वास नही है। तथा—

❋❋❋ [लोंकाशाह के चारित्र के विषय मे हम अभी अधेरे मे ही हैं] लोंकाशाह कौन थे? कब हुए? कहा कहा फिरे? इत्यादि बातें आज हम पक्की तरह से नहीं कह सकते हैं। जो कुछ बातें उनके बारे मे सुनने मे आती हैं, उनमे से मेरे ध्यान मे मानने योग्य ये जान पडती हैं।

ऐतिहासिक नोंध पृ० ५६ ❋❋❋

आगे वे लोकाशाह के विषय मे लिखते हैं कि—

❋❋❋ पर इस तरह का उल्लेख उनके निर्गुणी भक्तो ने कहीं नहीं किया कि लोकाशाह किस स्थान मे जन्मे? कब उनका देहान्त हुआ? उनका घर ससार कैसे चलता था? वे किस सूरत के थे? उनके पास कौन-कौन

शास्त्र थे ? इत्यादि इत्यादि हम कुछ नहीं जानते हैं।

[ऐतिहासिक नोंध पृ० ८७] ✱✱✱

स्थानक मत के आद्य प्रवर्तक लोकाशाह के विषय मे इस प्रकार का अंधकार होते हुए भी यदि कोई व्यक्ति अपने मान्य पुरुष के प्रति प्रशंसाओं का पहाड खडा कर दे या उपमाओ का सागर सुखा दे तो हमे कुछ भी आपत्ति नही है, किन्तु जब वे हमारे आप्त, मान्य, महान उपकारी, महान ज्ञानी पूर्वाचार्यों को शिथिलाचारी कहे, पापधर्म के प्रवर्तक कहें तब ऐसे जघन्य कृत्य कारक के सामने शांत कैसे बैठा जा सकता है ? स्थानकवासी सम्प्रदाय के जाने माने आचार्य हस्तीमलजी ने 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह" मे लिखा है कि—

✱✱✱ वीर निर्वाण (पश्चात्) ६२८ से और विक्रम संवत् ४१२ के वैशाख शुक्ला ३ के दिन प्रतिमा की स्थापना हुई। ३६ वर्ष तक अर्थात् ४४८ की साल तक कागज पर भगवान की तस्वीर बनाकर पूजन करते और उस पर केशर के छींटे डालते। इससे तस्वीर का आकार छिपने लगा। तब लिंगधारी रतन गुरु ने विचार कर काष्ठ की प्रतिमा कराई। संवत् ४४८ के माघ शुक्ला ७ से काष्ठ की प्रतिमा पूजी जाने लगी। ४९ वर्ष तक यह प्रथा चलती रही। फिर गुरुओ ने विचार किया कि काष्ठ की प्रतिमा नित्य पक्षाल करने से गीली रहती है, उसमे फूलन आ जाती है, इसलिए यह ठीक नहीं है। ✱✱✱

[आचार्य हस्तीमलजी का झूठ देखो कि वे कागज पर भगवान की तस्वीर बनाकर पूजने की बात लिखते हैं जबकि भारतवर्ष मे उस समय कागज का प्रचलन ही नही था। आगे वे कल्पित एवं हास्यास्पद बातें लिखते हैं कि—]

✱✱✱ तब (लिंगधारी गुरु ने) संवत ४९७ (चार सौ सतानवे) की साल चैत्र शुक्ला १० को मंदिर मे पाषाण की प्रतिमा स्थापित की।

धातु की मूर्तियां बनने लगी । लोगो को आकर्षण बढाने को प्रभावना, नाटक और स्वामी वात्सल्य आदि चालू किए । इस प्रकार स० ८८२ मे हिंसा धर्म प्रकट हुआ, उसका जोर बढा । ✽ ✽ ✽

✽ ✽ ✽ शिथिलाचारी साधुओ ने शास्त्रो को भडारो मे रखकर नयी रचना चालू की । वे काव्य, श्लोक, स्तुति और भाषा की रचना मनपसन्द सस्कृत व प्राकृत भाषा मे करने लगे । चौपाई, कवित्त, दोहा, गाथा, छन्द, गीत आदि अनेक प्रकार की जोडे कर लोगो को सुनाते, जिनेन्द्र देव की आज्ञा का लोप कर हिंसा धर्म की पुष्टि करते और रात मे जागरण करवाते तथा पुस्तको की पूजा करवाते, बाजा बजवाते, गीत गवाते और पूज्य कहाते हुए पाव मडवा-कर सरस माल खाते थे । ✽ ✽ ✽

✽ ✽ ✽ जिनेन्द्र पूजा के निमित्त नहाना, धोना और छैले (दुल्हे की तरह) बने रहना तथा पूजा के लिये फल, फूल, वनस्पति आदि तोडने की व्यवस्था देकर हृदय के दया-भाव को घटा दिया । ✽ ✽ ✽

✽ ✽ ✽ वीर स० ८८२ मे बारह वर्षीय दुकाल पडा । उस समय श्री पालिताचार्य शुद्ध सयमी हुए । आप दूर देशो मे सयम गुण सहित विचरने लगे । पीछे से कई महापुरुषो ने सथारा कर लिया । कोई एक भवतारी हुए । जो कायर थे वे शिथिलाचारी हुए । भिखारियो से पृथ्वी भर गई । खाने को पूरा अन्न नहीं मिलता । तब श्रावक लोग किवाड जुडे हुए रखते थे । तब श्रावकों और शिथिलाचारियो ने यह नियम बाधा कि द्वार पर आकर धर्मलाभ कहना । इस सकेत से किवाड खोलकर आहार बहरा देंगे । अस्तु । ऐसा ही होने लगा । भिखारी लोग इन साधुओ से रास्ते मे आहार पानी छीन लेते थे । साधुओ ने सोचा मुंहपत्ती अपनी पहचान है सो इसे उतारकर हाथ मे ले लो । बोलते समय मुंह को लगाकर बोलेंगे । इस रीति से उन्हें कुछ दिन आराम मिला । भिखारी इनकी चाल को समझकर फिर आहार लूटने लगे । तब इन्होंने भी

हाथ में डण्डा पकडा। डण्डे को देखकर भिखारी डरने लगे। इस भांति इन्होंने धर्म को कलंकित कर डाला। ❋ ❋ ❋

❋❋ श्री पालीताचार्य भी देश मे पधारे। तब साधुओ का पतित आचार देखकर उन्हें समझाया। परन्तु मिथ्यात्व के उदय न समझे। ❋ ❋ ❋

❋ ❋ ❋ इन्होंने (शिथिलाचारियो ने) अपनी पूजा के लिये चौंतरा, चैत्य, पगल्या, मदिर, देहुरा बधवाये। अलग-अलग गच्छ बधी करी। धर्म के ढोंगी बने। ❋ ❋ ❋

❋ ❋ ❋ आचार्य, ऋषि, मुनि, आदि शब्दो को तोडकर विजय, सूरि, पन्यास, यति आदि शब्दो को जोडने लगे। ❋ ❋ ❋

स्थानकपथी आचार्य हस्तीमलजी ने उक्त दुस्साहस पूर्ण आक्षेप श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैनाचार्यों आदि पर किया है। इसके विषय मे श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज को जो भी उचित हो करना चाहिए एव जैन समाज की एकता के प्रेमी (!) "जैन इतिहास समिति" [लाल भवन, चौडा रास्ता, जयपुर-३] पर विरोध सूचक पत्र भी लिखना चाहिए।

इन्ही आचार्य द्वारा रचित दूसरी पुस्तक "जैनधर्म का मौलिक इतिहास खड-१ और २" है, जिसमे भी ऐसी ही साम्प्रदायिक कटुता उभारने वाली और शास्त्र निरपेक्ष मनघडत बातें भरी पडी हैं। इनके इतिहास की कल्पित और झूठ कुछ बातें प्रस्तुत हैं।

सगर चक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रो की अष्टापदजी तीर्थरक्षा मे मौत हुई थी, इस पर वे लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ संभव है, पुराणों मे शताश्वमेधी की कामना करने वाले सगर के यज्ञाश्व को इन्द्र द्वारा पाताल लोक मे कपिलमुनि के पास बाधने और

सगर पुत्रो के वहाँ पहुचकर कोलाहल करने से कपिलऋषि द्वारा भस्मसात् करने की घटना से प्रभावित हो जैनाचार्यों ने ऐसी कथा प्रस्तुत की हो। ✵ ✵ ✵

जैनशासनोन्नति कारक महान राजा श्री सप्रति के विषय मे वे लिखते है कि—

✵ ✵ ✵ श्वेतपाषाण की कोहनी के समीप गाठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ जैन समाज मे प्रसिद्ध रही है और उन सभी का सम्बन्ध राजा सप्रति से स्थापित किया जाता है। ऐसी प्रतिमाओं के अनेक स्थानो पर प्रतिष्ठापित होने का उल्लेख भी किया गया है। मेरी विनम्र सम्मति के अनुसार ये श्वेतपाषाण की प्रतिमाएँ सम्प्रति अथवा मौर्यकाल की तो क्या तदुत्तरवर्ती काल की भी नहीं कही जा सकती। ✵ ✵ ✵

✵ ✵ ✵ जहाँ तक जैन मूर्ति-विधान एव उपलब्ध पुरातन अवशेषो का प्रश्न है, यह बिना किसी सकोच के कहा जा सकता है कि राजा सप्रति द्वारा निर्मित मदिर या मूर्तियाँ भारतवर्ष के किसी भी भाग मे आज तक उपलब्ध नहीं हो पाई हैं। ✵ ✵ ✵

आर्द्रकुमार के विषय मे वे लिखते हैं कि—

✵ ✵ ✵ अभयकुमार ने अनार्यदेशस्थ अपने पिता के मित्र अनार्य नरेश के राजकुमार (आर्द्रकुमार) को धर्मप्रेमी बनाने के लिये धर्मोपगरण (?) की भेंट भेजी। ✵ ✵ ✵

करीब २ हजार पृष्ठ के "जैनधर्म का मौलिक इतिहास खड-१, खड-२" मे ऐसी झूठपूर्ण एव कल्पित अनेक बातें आचार्य हस्तीमलजी ने लिखी हैं। ऐसे मनघडत इतिहास को "मौलिक" कैसे कहा जा सकता है ? एव इसको "जैनधर्म का इतिहास" कहना भी असत्य और अन्याय पूर्ण ही है।

सगर पुत्रों के वहाँ पहुचकर कोलाहल करने से कपिलऋषि द्वारा भस्मसात् करने की घटना से प्रभावित हो जैनाचार्यों ने ऐसी कथा प्रस्तुत की हो। ✵✵✵

जैनशासनोन्नति कारक महान राजा श्री सप्रति के विषय मे वे लिखते हैं कि—

✵✵✵ श्वेतपाषाण की कोहनी के समीप गाठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ जैन समाज मे प्रसिद्ध रही है और उन सभी का सम्बन्ध राजा सप्रति से स्थापित किया जाता है। ऐसी प्रतिमाओं के अनेक स्थानो पर प्रतिष्ठापित होने का उल्लेख भी किया गया है। मेरी विनम्र सम्मति के अनुसार ये श्वेतपाषाण की प्रतिमाएँ सम्प्रति अथवा मौर्यकाल की तो क्या तदुत्तरवर्ती काल की भी नहीं कही जा सकती। ✵✵✵

✵✵✵ जहाँ तक जैन मूर्ति-विधान एव उपलब्ध पुरातन अवशेषो का प्रश्न है, यह बिना किसी सकोच के कहा जा सकता है कि राजा सप्रति द्वारा निर्मित मदिर या मूर्तियाँ भारतवर्ष के किसी भी भाग मे आज तक उपलब्ध नहीं हो पाई हैं। ✵✵✵

आर्द्रकुमार के विषय मे वे लिखते हैं कि—

✵✵✵ अभयकुमार ने अनार्यदेशस्थ अपने पिता के मित्र अनार्य नरेश के राजकुमार (आर्द्रकुमार) को धर्मप्रेमी बनाने के लिये धर्मोपगरण (?) की भेंट भेजी। ✵✵✵

करीब २ हजार पृष्ठ के "जैनधर्म का मौलिक इतिहास खड-१, खड-२" मे ऐसी झूठपूर्ण एव कल्पित अनेक बाते आचार्य हस्तीमलजी ने लिखी हैं। ऐसे मनघडत इतिहास को "मौलिक" कैसे कहा जा सकता है? एव इसको "जैनधर्म का इतिहास" कहना भी असत्य और अन्याय पूर्ण ही है।

आचार्यं द्वारा रचित कल्पित इतिहास के उत्तर मे मैंने यह मीमासा द्वारा यत्किंचित् प्रयत्न किया है। प्रबुद्ध और विज्ञजनो को इस विषय मे विशेष प्रयत्न करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन समाज मे विद्यमान सैकडो सुविहित महासयमी पचाचार पालक–प्रसारक आचार्यं भगवतो के पवित्र कर कमलो मे मेरी यह तुच्छ रचना समर्पण करता हू एव उन पूज्य आचार्यं भगवतो से करबद्ध सविनय निवेदन करता हू कि स्थानकपथियो की कुप्रवृत्तियो के प्रति आप कुछ सोचें।

सिद्धान्त महोदधि स्व० आचार्य देव श्रीमद् विजय प्रेम-सूरीश्वरजी महाराज साहब के विद्वान् शिष्यरत्न, १०८ वर्धमान तप-आयबील की ओली के आराधक, १०८ से भी अधिक शिष्य-प्रशिष्यो के सयममार्गदर्शक और प्रवर्तक, न्यायविशारद मेरे पूज्य गुरुदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज साहब की इस मीमासा—पुस्तक की रचना मे नि.सीम कृपा रही है, जिनकी अमिदृष्टि से ही यह मीमासा पुस्तक प्रस्तुत है।

आगमज्ञ, गीतार्थ मूर्धन्य, पूज्य पन्यास श्री जयघोष विजयजी गणि महाराज साहब के शिष्य रत्न नव्यन्याय के प्रखर विद्वान मुनिराज श्री जयसुन्दर महाराज साहब की ज्ञानदान द्वारा मुझ पर अपार कृपा रही है, जिन्होने प्रस्तुत मीमासा पुस्तक की पाडुलिपि को जाँचकर अनेक अत्यतोपयोगी सूचन करके अपूर्व मार्गदर्शन दिया है, साथ ही साथ इन सयमी महापुरुष ने 'पुरोवचन' स्वरूप प्रस्तावना लिखकर अत्यन्त उपकार भी किया है।

विद्वान् मुनिराज श्री गुणसुन्दर विजयजी महाराज साहब ने भी "दो शब्द" लिखने द्वारा मेरे प्रति अपार वात्सल्य प्रगट करके बहुत उपकार किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन करने वाले सुश्रावक श्री कपूरचन्दजी जैन (रिटायर्ड तहसीलदार) का सराहनीय सहयोग रहा वे धन्यवाद के पात्र हैं। श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सघ-मदनगज एव दिव्य दर्शन ट्रस्ट ने आर्थिक सहयोग देकर सुकृत लाभार्जन किया है, वह अनुमोदनीय है। मुद्रक सज्जन श्री पाँचूलालजी जैन की सहृदयता भी धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा आत्मार्थी साधक मूर्तिपूजा सम्बन्धित तथ्य सत्य को जाने-माने और आत्मश्रेय साधे ऐसी शुभाषा है।

२-१०-८३
ओसवाली मोहल्ला
श्री श्वे जैन मदिर, मदनगज
(जि०-अजमेर)
राजस्थान

भुवन सुन्दर विजय

्रो

कदाचित् कोई पूछ ले कि "गगन मे सूर्य-चन्द्र चमकते हैं"—इसमे क्या प्रमाण ? शास्त्र मे कहा लिखा है ? अनादिकाल से तो वह नही था अब यकायक कहा से आ गया ? कौनसे आप्तपुरुषो ने सूर्य-चन्द्र का प्रचार किया ? सूर्य-चन्द्र की मान्यता अधिकतर कितनी प्राचीन होगी ? उन मान्यता मे पीछे से क्या-क्या परिवर्तन हुआ ? आदि-आदि ।

अहो ! ये प्रश्न कितने गहरे हैं, कितने कठिन हैं ? कोई सामान्य पुरुष की गु जाईश है क्या ऐसे प्रश्नो के उत्तर देने की ? ऐसे तात्त्विक (!) प्रश्न करने वालो को तो हाथ जोडकर यही कहना पड़ेगा, भाई ! तुम्हारे प्रश्न बहुत गहन हैं, कोई सर्वज्ञ ही उनका समाधान कर सकता है ।

ठीक इसी प्रकार १६वीं शताब्दी मे जैन शासन मे मूर्तिपूजा के गहन विषय मे भी ऐसे ही प्रश्नो की परम्परा बन गयी । बहुत से धुरधर पण्डितो ने उन प्रश्नो के उत्तर देने का साहस किया, लेकिन प्रश्नकर्ता वर्ग को सतोष हो ऐसा उन तात्त्विक (!) और अति गहन (!) प्रश्नो का समाधान कौन करे ? आखिर उन लोगो ने मान लिया—मूर्ति-पूजा गलत है, अशास्त्रीय है, आधुनिक है, उसमे किसी आप्तपुरुषों की सम्मति नही है ।

बस ! एक नया सम्प्रदाय बन गया, कुछ नाम रख लिया, कुछ वेष बना लिया, झुकने वाले मिल गये जो झुकाने वालो की तरकीब

या शरम से छूट न पाए। कुछ शास्त्र मान भी लिए, तो कुछ उनकी मनगढत मान्यताओ के प्रतिकूल थे उनको छोड दिया, नये भी शास्त्र कुछ बना लिए। हो गया, भगवान महावीर की मूर्ति को ही छोड दिया, नाम लेने के अधिकार को तो बडे चाव से सुरक्षित रखा।

इतिहास के पन्ने मत उलटाओ, उसमे तो जहा कही मूर्ति-पूजा का ही समर्थन मिलेगा। इतिहास भी उन लोगो ने नया ही बना लिया, जिसमे से मूर्तिपूजा को निकाल दिया।

अरे! मूर्तिपूजा! तूने क्या ऐसा अपराध किया था उन लोगो का, जिससे तेरे नाम से वे लोग काप उठते हैं, एतराजी रखते हैं।

हा! विक्रम की सातवी शताब्दी तक किसी अनार्य ने भी तेरे खिलाफ एक लफ्ज भी नही निकाला था। १३००–१४०० वर्ष पूर्व सबसे पहिले अरब देश मे मोहम्मद पैयगम्बर ने तेरा बहिष्कार कर दिया, हा उसके पास समसेरो की बडी ताकत थी।

वि० स० १५४४ के निकटवर्ती उपाध्याय श्री कमलसयमजी लिखते हैं कि उस पैयगम्बर का अनुयायी फिरोजखान बादशाह दिल्ली के तख्त पर आरूढ होकर मन्दिर मूर्तियो को तोडने लगा।

इधर उसी काल मे लोकाशाह नामक एक जैन गृहस्थ अप-मानित होकर सैयद से जा मिला और उन म्लेच्छो के कुसग से मूर्तिपूजा का जोर शोर से विरोध करने लगा। जैन शासन मे मूर्तिपूजा के खिलाफ विद्रोह करने वाला यह प्रथम ही था। मुसलमानो की ओर से उसको मूर्तिपूजा के खिलाफ प्रचार करने मे बहुत सहायता मिल गयी। एक सम्प्रदाय बन गया लोकागच्छ के नाम से, किन्तु उनके अनुयायियो ने सत्य समझकर फिर से मूर्ति को अपना लिया और लोकागच्छ मे पुन मूर्तिपूजा पूर्ववत् प्रारम्भ हो गयी। काल के प्रभाव से धर्मसिह और

लवजी ऋषि ने उस सम्प्रदाय से अलग होकर फिर से लोकाशाह की भक्ति के नाम पर मूर्तिपूजा के खिलाफ बगावत कर दी। उनका भी सम्प्रदाय चल पडा, लोग उनको ढूढकमत के नाम से पहिचानने लगे जो नही जचा तो आखिर स्थानकवासी या साधुमार्गी ऐसा सुनहरा नाम बना लिया।

मूर्तिपूजा के खिलाफ अनेक प्रश्न उपस्थित किये गये। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय की ओर से उन सभी प्रश्नो का अकाट्य तर्कों से और उनके मान्य शास्त्र पाठो से समाधान किया गया, मूर्तिपूजा मे चार चाद लग गये। मेघजी ऋषि, आत्मारामजी महाराज इत्यादि अनेक भवभीरु पापभीरु महापुरुषो ने उस बेबुनियाद सम्प्रदाय को छोड दिया और मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के पक्के उपासक बन गये।

१६ वी, १७ वी, १८ वी शताब्दियो मे हो गये अगणित आचार्य-मुनियो ने मूर्तिपूजा मे अगणित प्रमाण देते हुए अनेक निबन्धो की रचना की। मूर्तिपूजा के खिलाफ जितने भी प्रश्न हो सकते हैं उन सभी का शास्त्रानुसारी तर्कगर्भित समाधान करने के लिए आज तो प्रचुर मात्रा मे साहित्य, पुरातत्त्व, शास्त्रपाठ और प्राचीन साक्ष्य उपलब्ध हैं। तटस्थ बुद्धि से पर्यालोचन करने वालो को शुद्ध तत्त्व निर्णय करने के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इतना होते हुए भी मूर्तिपूजा के विद्वेष से उसके खिलाफ लिखने वाले लेखको की आज कमी नही है, यद्यपि ऐतिहासिक तथ्यो को तोड-मोड किये बिना यह सम्भव ही नही है।

मुनि श्री भुवनसुन्दर विजयजी ने ऐसी तोड-मोड करने वाले लेखको की कुचेष्टा का पर्दा फाश करने का इस पुस्तक मे एक सराहनीय कौशलपूर्ण विद्वद्‌गम्य प्रयास किया है इसमे सन्देह नही है। इससे तटस्थ इतिहास के जिज्ञासुओ को सत्य-तथ्य की उपलब्धि होगी, भवभीरुवर्ग

को दिशा परिवर्तन की प्रेरणा भी मिलेगी, उत्पथगामियो को सत्यमार्ग का प्रकाश मिलेगा।

मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त और आत्मोन्नति के लिए आवश्यक एव अनिवार्य है, इस तथ्य की सिद्धि मे हजारो प्रमाण मौजूद है। मूर्तिपूजा को प्रमाणित करने वाले आचार्यों मे उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज का नाम प्रात स्मरणीय है। स्थानकवासी सम्प्रदाय मे भी आज इनके जैन–तर्क भाषा आदि ग्रन्थो को बडी प्रतिष्ठा है। प्रतिमाशतक, प्रतिमा स्थापन न्याय, कूप दृष्टान्त विशदी करण, उपदेश रहस्य, षोडषक टीका इत्यादि ग्रन्थो मे जिन अकाट्य प्रमाणो का निर्देश किया है, उनके सामने सभी स्थानकवासियो का मु ह आज तक बन्द ही रहा है। किसी ने भी उसके खिलाफ कुछ भी लिखने का आज तक साहस नही किया है।

मूर्तिपूजा के समर्थक और भी कई ग्रन्थ हैं जिनमे ये प्रमुख हैं—वाचक शेखर श्री उमास्वाति आचार्य महाराज कृत पूजा प्रकरण, १४ पूर्वी पूज्य भद्रबाहुस्वामी महाराज कृत आवश्यक निर्युक्ति आदि, आचार्य श्री हरिभद्रसूरि महाराज कृत पूजा पचाशक प्रकरण, षोडशक प्रकरण और श्रावक प्रज्ञप्ति टीका एव ललितविस्तरा ग्रन्थ, आचार्य श्री शातिसूरिजी महाराज कृत चैत्यवदन बृहद्भाष्य, अवधिज्ञानी श्री धर्मदासगणि महाराजकृत उपदेशमाला, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज कृत योग शास्त्र आदि ग्रन्थ निधि, नवागी टीकाकार आचार्य श्री अभयदेवसूरि महाराज कृत पचाशक वृत्ति।

तदुपरान्त श्री ज्ञाता सूत्र, ठाणाग सूत्र, रायपसेणी सूत्र, जीवाभीगम सूत्र, महा प्रत्याख्यान सूत्र, महाकल्पसूत्र, महानिशीथ सूत्र इत्यादि मूल अग-उपाग सूत्रो मे भी मूर्तिपूजा के अनेक उल्लेख भरे पडे हैं।

महा कल्पसूत्र मे गौतम स्वामी के प्रश्नोत्तर में श्री महावीर भगवान ने कहा—"जो श्रमण जिन मदिर को न जाय उसे बेला या पाच उपवास का प्रायश्चित आता है। उसी तरह श्रावक को भी।" तथा इसी सूत्र मे कहा है—जो श्रावक जिन पूजा नही मानते वे मिथ्या-दृष्टि हैं। तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को जिनमन्दिर मे जाकर चन्दन-पुष्पादि से पूजा करनी चाहिए।

श्री भगवती सूत्र मे—तु गीया नगरी के श्रावको ने स्नान करके देवपूजन किया यह उल्लेख है—

"ण्हाया कयबलिकम्मा"

श्री उववाई सूत्र मे चम्पा नगरी के वर्णन मे "बहुलाइं अरिहत चेइयाइ" बहुत से अरिहन्त चैत्यो यानी जिन मदिर का उल्लेख है।

श्री भगवती सूत्र मे चमरेन्द्र के अधिकार मे तीन शरण दिखाये है—"अरिहते वा अरिहत चेइयाणि वा भाविअप्पणो अणगार-स्स वा।" यहा अरिहन्त चेइयाणि का अर्थ अरिहत की प्रतिमा ऐसा होता है।

श्री उपासकदशाग आगम सूत्र मे आनन्द श्रावक के अधिकार मे जिन प्रतिमा वदन का उल्लेख है—

"नो खलु मे भते ! कप्पइ अन्नउत्थिय परिग्गहियाणि अरिहत चेइयाणि वा वदित्तए वा नमसित्तए वा।"

यहाँ अन्य तीर्थिको से परिग्रहीत जिनप्रतिमाओ को वंदन न करने के नियम से अन्य तीर्थिको से अपरिगृहीत जिन प्रतिमाओ को वन्दन की सिद्धि होती है।

श्री कल्पसूत्र मे भी सिद्धार्थ राजा ने हजारो की सख्या मे जिन प्रतिमा पूजन करवाने का "याग" शब्द से उल्लेख है।

श्री व्यवहार सूत्र मे जिन प्रतिमा के सन्मुख आलोचना (प्रायश्चित) करने का उल्लेख है।

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र मे निर्जरार्थी को चैत्यहेतुक वैयावच्च करने का आदेश है—"चेइयट्ठे · इत्यादि" अर्थात् प्रतिमा की हिलना, अवर्णवाद और अन्य आशातनाओ का उपदेश के माध्यम से निवारण करने का साधु को कहा है।

श्री द्वीप सागर पन्नति सूत्र मे कहा है कि स्वयभूरमण समुद्र मे जिन प्रतिमा के आकार वाले मत्स्य होते हैं, जिनको देखकर जाति स्मरण होने से तिर्यंच जलचरो को सम्यक्त्व प्राप्ति होती है।

श्री भगवती सूत्र के प्रारम्भ मे ही ब्राह्मी लिपि को भी नमस्कार किया है।

इस प्रकार अनेक शास्त्र–आगम सूत्रो से मूर्तिपूजा सिद्ध होती है।

मूर्तिपूजा से लाभ होता है या नही—यह तो करनेवाला ही जान सकता है, न करनेवाले को क्या पता ?

हा ! कोई इक्षुरस की मधुरता का चाहे कितना भी अपलाप करे किन्तु उसका आस्वाद करने वाला तो उसके मधुर रस का साक्षात् ही अनुभव करता है। स्थानकवासी और तेरापथी बन्धु और साधु-सतो से यह अनुरोध है कि वे सब समुदाय में या अकेले एक मास स्वय जिन-मूर्ति की उपासना करके अनुभव करलें कि उसमे लाभ होता है या नही ? हस्त ककण को कभी दर्पण की जरूरत नही होती।

मूर्तिपूजा के समर्थक लेख और निबन्धो से विगत कुछ वर्षों मे यह लाभ अवश्य हुआ है कि कुछ कट्टर विरोधी साधुओ--महासतिओ को छोडकर अधिकाश वर्ग ने मूर्तिपूजा का विरोध करना छोड दिया है। अनेक स्थानकवासी सद्गृहस्थो ने मदिर मे दर्शन करना प्रारम्भ कर दिया है, हालाँकि वे लोग गाव मे पूजा-भक्ति करने मे कुछ हिचकाते हैं जरूर किन्तु तीर्थों मे जाकर पूजा-भक्ति कर लेते हैं।

मूर्तिपूजा मे सावद्य है—हिंसा है इत्यादि जो पहिले घोषणा की जाती थी, वह भी अब तो मन्द होती जा रही है, क्योकि मूर्तिपूजा मे कोई हिंसादि दोष नही बल्कि अगणित लाभ ही है, इस तथ्य को शास्त्र, तर्क और अनुभव का पुष्ट समर्थन है।

समय समय पर मूर्तिपूजा के समर्थन मे ऐसे लेख और निबध लिखे ही जा रहे हैं और उसी का यह सत्प्रभाव है कि हजारो लोग पुनः मूर्तिपूजा को आदर से देखने लगे है। इस पुस्तक से भी यही लाभ सम्पन्न होगा यह आशा की जाती है। पुस्तक के लेखक मुनि श्री का यह शुभ प्रयत्न निःसन्देह अभिनन्दन के योग्य है।

दि० २-१०-८३
नवसारी
(गुजरात)

मुनि सुन्दर वि

ि ा पू ा ो यथा ता

ो व

जगत के अधिकाश व्यवहारो मे जडपदार्थ मे चैतन्य का आरोप कर उनसे प्रीति-अप्रीति होने की सार्वत्रिक स्वीकृति होने और जैनागम मे जगह जगह पर परम उपादेय श्री जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा (बिम्ब) से शुभ अध्यवसाय की बात प्रत्यक्ष लिखी होने पर भी "स्थापनाजिन" को स्वीकार न करने की अपनी विपरीत धुन मे एकान्त-वाद का आश्रय लेकर स्थानकपथी स्थापना सत्य का सर्वथा निषेध करते हैं उनका यह दृष्टिकोण सर्वथा अशोभनीय है और एकान्तवादी होने के कारण मिथ्यात्व स्वरूप भी है।

आज से करीब ४०० वर्ष पहिले श्वेताम्बर जैन समाज से मूर्तिपूजा के विरोध के कारण अलग हुए इन लोगो ने सर्वप्रथम प्रतिमा एव तस्वीर मात्र का ही विरोध किया था। किन्तु बाद मे तस्वीर की उपयोगिता समझकर ये लोग अपनी तस्वीर छपवाने-बंटवाने लगे यावत् श्री महावीरस्वामी की मुंहपत्ती बधी हुई तस्वीर छपवाकर कल्पित स्थानकपथ का प्रचार करने लगे। इसीप्रकार धन्नाजी, शालिभद्रजी, मेघ कुमारजी आदि मुनियो की मुंहपत्ती बधी हुई तस्वीर भी वे लोग छपवाने-बंटवाने लगे और अपनी प्रतिष्ठा रखने के लिये "नीचे पडे की ऊंची टांग" वाली कहावत की तरह तस्वीर के नीचे लिखवाते हैं कि—"तस्वीर सिर्फ परिचय के लिये"। परमोपकारी तीर्थंकर परमात्मा की

तस्वीर-प्रतिमा-आकृति-चित्र से नफरत और नाराजगी करने वाले वे स्थानकपथी आज तो अपनी जडी-जडायी तस्वीर एव गले मे लटकाने का तस्वीर युक्त लोकेट तैयार करवाकर अपने भक्तो को देते हैं।

किन्तु वर्तमान मे तो ये लोग अपने गुरु के समाधिमदिर तक बनवाते हैं। मेरठ मे उनके गुरु का स्मारक स्वरूप कीर्तिस्तम्भ भी बना है, जिसके चारो ओर बाग, हरी दूब तथा बिजली आदि जगमगाते, हैं, उन्हे देखकर ऐसा लगता है कि इन स्थानकपथियो को वैमनस्य सिर्फ भगवान श्री तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर-आकृति-प्रतिमा से ही है, अन्य स्मृतिकारको से नही।

गुरु के समाधि मदिर, माता-पिता की तस्वीर, सिनेमा के दृश्यो, जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा आदि को देखकर मनुष्य को खुशी-नाखुशी का मानसिक अध्यवसाय होता है। इन सब बातो से यह प्रत्यक्ष सत्य है कि जड मे भी चेतन पर उपकार या अपकार करने की बडी शक्ति है।

जड का चेतन पर महान प्रभाव पडता है। जैसे वीर पुरुषो की तस्वीर-चित्र-स्टेच्यू देखकर हमारे मे वीरता का सचार होता हैं। क्या साधुवेष या शास्त्र ग्रन्थो को देखकर सिर श्रद्धा से नत-मस्तक नही होता है ? सिनेमा के परदे पर दिखाये जाने वाले दृश्य जड होने पर भी देखने वालो पर उसका गहरा असर पडता है। जड शराब आत्मा के चैतन्य गुण को नष्ट तक कर देती है। जड कर्म पुद्गल ने ही अनन्त शक्तिशाली हमारी आत्मा को बंधन मे बाध रखा है। साधुवेष पहिनने मात्र से ही व्यक्ति वदनीय बन जाता है। उतना ही नही छोटी मुँहपत्ती की जगह लम्बी मुँहपत्ती बाधने पर प्रतीक बदल जाने से साधु की पहिचान तक बदल जाती है, यह मूर्तिपूजा का ही एक प्रकार है। कोई स्थानकपथी साधु अपने मुह पर लगायी मुँहपत्ती को तोड दे तो फिर

क्या उनके भक्तगण उनको वदनीय मानेंगे ? क्या अन्य स्थानकपथी मुनि उसको तिखुत्ता के पाठ से वदन करेंगे ?

राजकीय पुरुषो की समाधि पर पुष्प चढाना, राष्ट्रध्वज को वदन करना-सलामी देना, देशनेताओ के बावले पर पुष्पमाला अपण करना, गुरु के जड आसन, पाट आदि को पैर न लगाना, गुरु की तस्वीर युक्त लोकेट बांटना यह सब मूर्तिपूजा के ही प्रकार है ।

समवसरण मे चतुर्मुख तीर्थंकर का स्वीकार करने वाले शेष तीन प्रतिमा-मूर्तियो का अपलाप कैसे कर सकते हैं ? चारो तीर्थंकर भगवान के समक्ष लोग वन्दन, पूजन सत्कार, सम्मान करते हैं देवेन्द्र, चँवर ढुलाते हैं, सब जीवो को स्व सम्मुख दर्शन-देशनादि मिलता है । इन सब तथ्यो से प्रतिमा-आकृति की महत्ता का सन्न्यायनिष्ट प्रामाणिक सज्जन कैसे अपलाप कर सकते हैं ?

प्राचीन शिलालेखो एव प्रतिमा पट्टो पर उट्ट कित लेखो से प्रतिमा पूजा की ठोस सिद्धि होती है । जैनागम एव प्राचीन जैन शास्त्र भी प्रतिमापूजा सबधित इस सत्य तथ्य को जगह जगह पर पुष्टि करते ही हैं । दशवैकालिक शास्त्र तो दीवार पर चित्रित स्त्री-चित्र को ब्रह्मचारी के लिये खतरनाक बताते हुए उस स्थान मे रहने का भी निषेध करता है । यथा—

☼☼☼ चित्तभित्त न निज्झाए, नारीं वा सु अलकिय ।
भक्खर पिव दट्ठुण, दिट्ठि पडिसमाहरे ॥

[श्री दशवैकालिकसूत्र-अध्ययन ८ (गाथा ५५) ☼☼☼

•

श्री कल्पसूत्र शास्त्र [सूत्र १०३] बताता है कि—

※※※ तएण से सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिइवडियाए वट्ट-माणीए सइए अ साहस्सिए अ "जाए" अ दाए अ भाए अ दलमाणे अ। ※※※

यहा प्राचीन टीकाकार महर्षि ने 'जाए' यानी याग का अर्थ जिनपूजा किया है। श्री आचाराग सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, तृतीय चूलिका पन्द्रहवे अध्ययन मे भगवान श्री महावीर स्वामी के माता-पिता त्रिशलादेवी और सिद्धार्थ राजा को श्री पार्श्वनाथ भगवान की परम्परा के (सतानीय) श्रावक बताये हैं। ऐसी दशा मे श्री कल्पसूत्र शास्त्र कथित "जाए" यानी याग शब्द का अर्थ 'जिनपूजा' के सिवा अन्य क्या हो सकता है ? याग शब्द मे यज् धातु है, जिसका अर्थ देवपूजा भी होता है।

प्रश्न होगा कि—"क्या पत्थर की गाय दूध देने मे समर्थ है ? हा, पत्थर की गाय केवल पहिचान के लिए अवश्य काम आ सकती है।"—इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—"गाय-गाय" ऐसा नाम जाप करने से भी क्या गाय नाम का जाप दूध देने मे समर्थ होगा ? परमात्मा की मानी गई चैतन्य हीन मूर्ति अगर शुभ ध्यान एव शुभ भाव मे सहायक नही मानी जाए तो फिर परमात्मा का जड नाम शुभ अध्यवसाय मे सहायक कैसे माना जा सकता है ? अस्तु।

स्थापना निक्षेप का निषेध करने वाले कोई स्थानकपथी अगर लोकोत्तर जैनधर्म का इतिहास लिखेगा तो जैसे कोई नादान बालक इधर-उधर टेढी-मेढी लकीरें निकालकर उसको Map of India (भारत का मानचित्र) कहे और तुच्छ आनन्द मनाये ऐसी ही कुछ अजीब सी बाल चेष्टा आचार्य हस्तीमलजी ने जैनधर्म विषयक इतिहास को कल्पित एव गलत लिखकर की है, जिससे जैन समाज को सावधान एव सतर्क रहने की अत्यन्त आवश्यकता है।

मुनिराज श्री भुवनसुन्दर विजयजी महाराज ने आचार्य हस्तीमलजी द्वारा लिखित "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" पुस्तक पर यह मीमासा लिखी है। इस तर्कपूर्ण और शास्त्रीय मीमासा के विषय मे मैं क्या कह सकता हू? पाठक स्वय पठन करें, सोचें और सत्य समझने मे सफलता प्राप्त करे यही शुभाभिलाषा है।

न्यायविशारद, वर्धमान तपोनिधि
आचार्य देवेश
विजय भुवनभानुसूरिजी
महाराज साहब
का
शिष्य
मुनि गुणसुन्दर विजय

चिन्तामणि जैन उपाश्रय
मधुमति
नवसारी (जि० सूरत)
गुजरात
दि० १५-६-८३
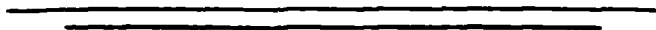
❀ ॐ नम स्याद्वादवादिने ❀
❀ श्री सद्गुरवे नमो नम. ❀

[प्रकरण–१]

। ` न

रागद्वेष विजेतार, ज्ञातार विश्व वस्तुन ।
शक्र पूज्य गिरामीश, तीर्थेश स्मृतिमानये ।।

जिसके वदन, पूजन, सत्कार एव सन्मान द्वारा राग-द्वेष आदि आन्तरिक शत्रु पर विजय पायी जाती है, ऐसे सुगृहीतनामधेय, सदैव स्मरणीय, इन्द्रपूज्य, स्याद्वादवादी तीर्थंकर परमात्माओ के नाम स्मरण पूर्वक द्रव्य-भाव मगल करके, वर्धमानतपोनिधि, न्यायविशारद् परमपूज्य गुरुदेव श्रीमद्, विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज साहब का शिष्य मैं [मुनि भुवन सुन्दर विजय] स्थानकमार्गी आचार्यश्री हस्तीमलजी महाराज द्वारा लिखित "जैन-धर्मका मौलिक इतिहास खड-१ तथा खड-२" पर मीमासा करना चाहता हू । श्वेताम्बर जैनमत मे करीब ४०० साल पहिले ऐसा मूर्तिभजक हुआ जिसने मूर्तिपूजन के विषय मे चैत्यवासी यतिओ की गलती देखकर और मुसलमान सैयद के वचनो मे आकर मूर्तिपूजा और मूर्तिमात्र का विरोध बोल दिया और ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया कि सिर दु खता हो तो उसको काट डालना । इसी परम्परा के एक महाशय आचार्य हस्तीमलजी हैं अत सज्जनो से प्रार्थना है कि जैनधर्म की रक्षा के सम्बन्ध मे मेरी इस बात पर आप सावधान होकर ध्यान दीजिए । आचार्य हस्तीमलजी लिखित 'जैनधर्मका मौलिक इतिहास खड-१, नया सस्करण जो १९८२ मे प्रकाशित हुआ है । खण्ड १, नया सस्करण के मुख पृष्ठ और अन्तिम पृष्ठ पर चौबीस तीर्थंकरो के लाछन चिह्नो की तस्वीर छपी

हुई है। तटस्थ इतिहास लिखने का दावा करने वाले आचार्य ने पुस्तक मे तीर्थंकर परमात्मा की आकृति (तस्वीर) कही भी नही छपवायी है। तीर्थंकरो की भिन्न-भिन्न पहिचान कराने वाले लाछन चिन्ह देकर और तीर्थंकरो की तस्वीर न देकर आचार्य ने बहुत अनुचित कार्य किया है। किन्तु इस पुस्तक के अन्दर दानदाता गृहस्थ की तस्वीर अवश्य छपवायी है। इतिहास लेखक ने ज्ञानदाता तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर न छपवाकर और द्रव्यदाता गृहस्थ की तस्वीर छपवाकर पुस्तक के प्रारम्भ मे ही उल्टी गगा बहायी है। क्या उत्कृष्ट ज्ञानदाता तीर्थंकर परमात्मा से भी बढकर द्रव्यदाता गृहस्थ उपकारी है ? जो कि ज्ञानदाता की तस्वीर इतिहास मे नही छपवायी और द्रव्यदाता गृहस्थ की तस्वीर छपवायी गयी।

यद्यपि इतिहास मे नमस्कार महामन्त्र और लोगस्स सूत्र का लिपिमय आकृति द्वारा आचार्य ने द्रव्य मगल किया है। किन्तु तीर्थंकर की चित्रमय आकृति से द्रव्य मगल नही माना ऐसा फर्क क्यो ? आचार्य को यह भूलना नही चाहिए कि तीर्थंकर भगवान के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चारो ही निक्षेप मगल रूप हैं एव जगत के उपकारक भी हैं।

"नामाकृतिद्रव्यभावैः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हंत, समुपास्महे ॥"

यह त्रिकाल अबाधित सत्य होते हुए भी आचार्य ने इसकी उपेक्षा की है।

ये दो खड करीब दो हजार पृष्ठो मे प्रकाशित हैं। प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान से लेकर चरम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान तक [एक कोडा कोडी सागरोपमकाल] का इतिहास प्रथम खड मे तथा दूसरे खड मे श्री महावीर भगवान के प्रथम गणधर श्री

गौतमस्वामी तथा प्रथम पट्टधर श्री सुधर्मास्वामी से लेकर पूज्य देवर्द्धि गरिण क्षमाश्रमरण तक का एक हजार वर्ष का इतिहास दिया गया है। जिसमे आचार्य ने जैनधर्म के इतिहास को अप्रमाणिक एव झूठा लिखकर अन्याय ही किया है। एक तटस्थ इतिहासकार के कथन मे जो सत्यता, विचार मे जो निष्पक्षता, सत्य कथन कहने मे जो निडरता होनी चाहिए उनका आचार्य मे सर्वथा अभाव ही पाया जाता है। जैन धर्म के आचार्य, जैनधर्म विषयक इतिहास मे तोड-मरोड करे, झूठ लिखे, अप्रामाणिक वचन प्रस्तुत करें, अन्याय पूर्ण वचन कहे, सत्य तथ्य को छिपाने का जघन्य प्रयास करे या सत्य को अर्धसत्य के रूप मे बताये इससे बडा खेद का विषय अन्य क्या हो सकता है ?

यह बात कहते हुए हमको अपार दु ख है कि आचार्य हस्तीमलजी ने अपने "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" ग्रन्थ मे कई ऐसी बाते लिखी हैं जो असगत है। वे उनको कहाँ से लाये इनका कुछ आधार–प्रमाण भी उन्होने नही दिया है। इसीलिये यह इतिहास नितात कल्पित एव अन्याय पूर्ण ही है और खोज-सशोधन करने वाले को कुछ भी प्रेरणा और मार्गदर्शन देने मे असमर्थ है। जिनप्रतिमादि विषयक तथ्यो को छिपाकर आचार्य ने केवल सम्प्रदायवाद और एकान्तवाद का ही आश्रय लिया है, जो इतिहास-लेखक के नाते सर्वथा अनुचित है। आचार्य यह बात सर्वथा भूल गये हैं कि स्वोत्प्रेक्षित तर्क और अनुमान के आधार पर प्रामाणिक इतिहास कभी भी नही लिखा जाता है। और यदि कोई ऐसा इतिहास लिखे तो ऐसे इतिहास को कौन उचित मानेगा ? इतिहास सत्य पर आधारित होता है, जबकि आचार्य द्वारा लिखित इतिहास को समिति द्वारा स्वमान्यतानुसार निर्माण करवाया गया है। जो स्थानकपथ को छोडकर अन्य जैन समाज इससे सहमत नही हो सकता, और न इसको जैन धर्म का मौलिक इतिहास कहा जा सकता है।

इस इतिहास मे आचार्य हस्तीमलजी ने जगह–जगह असत्य लिखकर जैनधर्मके विषयमे भ्रम फैलाया है। कथानको के तथ्योको गलत लिखकर ऐतिहासिक वास्तविकता की ओर से आखे बन्द करली हैं। इसको जैनधर्म का इतिहास कहना मजाक मात्र है। आचार्य द्वारा इतिहास मे जिनमदिर, जिनप्रतिमा तथा जिनप्रतिमा पूजा के विषय मे सत्य तथ्य छिपाने और जैनधर्म की गरिमा को घटाने का निकृष्ट प्रयास किया गया है, जो सर्वथा अस्तुत्य है। स्थानक पथ व्यामोह मे फँसकर, स्वपथ के तुच्छ स्वार्थवश प्रतिमा आदि अनेक विषयो मे जान-बूझकर परिवर्तन कर एव सत्य बात से दूर रहकर आचार्य ने अपना उल्लू सीधा करना चाहा है। जैनागमो एव आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य तथा प्राचीन मूर्तियाँ, शिलालेख आदि तथ्यो से जिनप्रतिमापूजा सत्य सिद्ध होते हुए भी अप्रामाणिक बातें लिखकर आचार्य ने सवथा झूठ का सहारा लिया है।

स्थानकमार्गी सम्प्रदाय के जानेमाने विद्वान आचार्य हस्तीमलजी महाराज ने तटस्थता, निष्पक्षता एव सत्य लिखने की प्रतिज्ञा करने के बावजूद भी सत्य पथ से विपरीत चलकर जैनधर्म को भारी क्षति पहुँचायी है। स्थानकमार्गी समर्थ आचार्य इतनी बडी अप्रामाणिकता कर सकते हैं यह भी एक सखेद आश्चर्य है। एक प्रामाणिक इतिहासकार को चाहिए कि वह चाहे कोई भी पथ या आम्नाय मे विश्वास करते हो किन्तु वे जिस पथ या आम्नाय के विषय मे लिखें, वह सत्य होना चाहिए। किन्तु आचार्य ने जैनधर्म विषयक इतिहास को असत्य लिखकर जैन समाज मे विषैला भ्रम फैलाया है।

हमारा यह स्पष्ट मत है कि कोई भी स्थानकपथी कभी भी जैनधर्म विषयक इतिहास को सत्य और प्रामाणिक लिख ही नही

सकता क्योकि जैनधर्म के मूल मे प्रतिमा पूजा की मान्यता है, जिसमे स्थानकपथी कदापि विश्वास नही करते हैं। अगर आचार्यको जैनधर्म-विषयक इतिहास गलत एव कल्पित ही लिखना था तो इतिहास लिखने की जरूरत ही क्या थी ? प्रामाणिक इतिहास लिखने की प्रतिज्ञा करना और सत्य छिपाना दोनो एक साथ नही हो सकता यह बात आचार्य को भूलनी नही चाहिए थी।

सत्यप्रिय जैन समाज को सावधान एव सतर्क होकर अप्रामाणिक एव स्वोत्प्रेक्षित तर्क के आधार पर लिखे गये इस इतिहास का अनादर एव बहिष्कार करना चाहिए। भविष्य मे कोई भी लेखक ऐसे किंवदन्ती स्वरूप इतिहास आदि पुस्तक को मुद्रित कर जैनधर्म को आघात पहुचाने की एव साम्प्रदायिक विष फैलाने की चेष्टा न करे, यही शुभ उद्देश्य लेकर पूज्य गुरुदेव श्री की अनुमति एव कृपा पूर्वक इस इतिहास की मीमासा करना हमने उचित समझा है।

सभव है कि उक्त आचार्य हस्तीमलजी आगे भी जैनधर्म विषयक इतिहास के अन्य खड प्रकाशित करवायेगे, हम उनसे आशा करते हैं कि वे भविष्य मे सत्य का आश्रय अवश्य लेगे।

आचार्य ने एक अनुचित कार्य यह भी किया है कि उन्होने स्थानकपथी मान्यतायुक्त इस ग्रन्थ का नाम—"जैनधर्म का मौलिक इतिहास" रखा है। जो कि सर्वथा अमौलिक होने के साथ-साथ भोले-जनो को भ्रम मे डालने वाला है।

तत्त्वप्रिय एव सत्यप्रिय समाज को ऐसे अमौलिक इतिहास की भर्त्सना करनी चाहिए। मैं पाठको के समक्ष आचार्य द्वारा रचित इतिहास मे से गलत एव अप्रामाणिक अशो का उद्धरण करूंगा।

आशा व्यक्त करता हूँ कि सभी सज्जन मेरी इस कृति को स्वीकार करेंगे तथा ऐसी कृतियों का अधिक से अधिक प्रचार प्रसार कर नामधारी आचार्यादि द्वारा होते विषैले प्रचार को रोकने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

रायपसेणी जीवाभिगमे, भगवती सूत्रे भाखी जी।
जबूद्वीप पन्नती ठाणांगे, विवरीने घणु दाखीजी ॥
वली अशाश्वति ज्ञाता कल्पमा, व्यवहार प्रमुखे आखीजी।
ते जिन प्रतिमा लोपे पापी, जिहा बहुसूत्र छे साखी जी ॥

न्यायविशारद पू० यशोविजयजी महाराज के लघुभ्राता
—श्री पद्मविजयजी महाराज

[प्रकरण-२]

ी ँकरों ा ोत

जब भी पुण्यात्मा तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होता है, तब छप्पन दिक्कुमारिकाएँ आती हैं, माता एव पुत्र का सुचिकर्म करती हैं। इन्द्रो का सिंहासन कपायमान होता है। सौधर्म इन्द्र भगवान को मेरु-पर्वत पर ले जाता है, वहाँ ६४ इन्द्र इकट्ठे होकर अपार भक्तिपूर्वक जन्माभिषेक महोत्सव सानन्द मनाते हैं। बाद मे वे देव-देवेन्द्र नदीश्वर-द्वीप मे जाकर, वहाँ स्थित शाश्वत जिनमदिरो मे आठ दिन का भक्ति महोत्सव मनाते हैं।

"जैनधर्म का मौलिक इतिहास", खड-१, पृ० १५ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

❖❖❖ महान पुण्यात्मा (तीर्थंकर परमात्मा) जब जन्म ग्रहण करते हैं, उस समय ५६ दिक्कुमारियो और ६४ देवेन्द्रो के आसन प्रकम्पित होते हैं। अवधिज्ञान के उपयोग के द्वारा जब उन्हें विदित होता है कि तीर्थंकर का जन्म हो गया है, तो वे सब अनादिकालसे "परपरागत" दिक्-कुमारियो और देवेन्द्रो के "जीताचार" के अनुसार अपनी अद्भुत दिव्यदेव ऋद्धि के साथ अपनी अपनी मर्यादा के अनुसार तीर्थंकर के जन्मगृह तथा मेरुपर्वत और नन्दीश्वर द्वीप मे उपस्थित हो, बड़े ही हर्षोल्लास पूर्वक जन्माभिषेक आदि के रूप मे तीर्थंकर का जन्म महोत्सव मनाते हैं। यह ससार का एक अनादि अनन्त शाश्वत नियम है। ❖❖❖

मीमासा—आचार्य ने अपनी कल्पित कल्पना परम्परागत, जीताचार, अपनी अपनी मर्यादा और शाश्वत नियम इन चार शब्दो से की है। खड-१ पृ १५ से १९ मे तीर्थंकरो का जन्माभिषेक महोत्सव मेरुपर्वत पर देव-देवेन्द्र कैसे मनाते हैं आदि का वर्णन किया है। किन्तु सत्य तथ्य को विपरीत करके यह तो 'जीताचार' है या 'परपरागत' है ऐसा लिखना नितान्त असत्य एव एकपक्षी होने के कारण सर्वथा गलत भी है। जबूद्वीप प्रज्ञप्ति शास्त्र के तीसरे अधिकार मे लिखा है कि जन्माभिषेक महोत्सवमे आनेवाले देव कोई स्वत अपार भक्तिवश, काई प्रियतमा देवी की प्रेरणा से, कोई मित्र के वचन से, कोई कौतुक से, कोई इन्द्र की आज्ञा से, तो कोई अपना आचार कर्तव्य समझकर प्रभुजन्म महोत्सव मे शामिल होते है।

☼ ☼ ☼ श्री जबूद्वीप प्रज्ञप्ति कथित शास्त्रपाठ इस प्रकार है यथा—अप्पेगइया वदणवत्तिय एव पूयणवत्तिय सक्कार सम्माण दसण कोउहल्ल अप्पे सक्कस्स वयणुयत्तमाणा अप्पे अण्णमण्ण यत्तमाणा अप्पेजीयमेय एवमादि। ☼ ☼ ☼

अतः मात्र शाश्वत आचार से या परम्परागत रीति से देव-देवेन्द्र मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक महोत्सव मनाते हैं, ऐसा लिखने मे आचार्य का अनेकान्त दृष्टि एव प्राचीन जैनागमो के प्रति कृतज्ञता तथा परमात्मा के प्रति भक्ति भाव का सर्वथा अभाव ही व्यक्त होता है। परम्परा से आने का अर्थ तो यही हुआ कि देव-देवेन्द्र बेचारे लाचारी से, मजबूरी से, अनिच्छा से या उदासीनता से आते हैं। किन्तु आचार्य का ऐसा लिखना उन देवो की भक्ति की महिमा पर लाछन लगाना है।

देव-देवेन्द्र नन्दीश्वर द्वीप मे जाकर "बडे हर्षोल्लास के साथ" लगातार आठ दिन तक प्रभुभक्ति महोत्सव मनाते हैं। इस विषय मे खड-१, पृ० ५५५ पर आचार्य लिखते है कि—

इस प्रकार घोषणा करवाने के पश्चात् शक्र और सभी देवेन्द्रो ने नन्दीश्वर द्वीप मे जाकर तीर्थंकर भगवान का अष्टान्हिक जन्म-महोत्सव मनाया। 'बड़े हर्षोल्लास" के साथ अष्टान्हिक महोत्सव मनाने के पश्चात् सभी देव और देवेन्द्र आदि अपने अपने स्थान लौट गये।

मीमासा—"बडे हर्षोल्लास" शब्द से यह स्पष्ट होता है कि देवो द्वारा जन्माभिषेकादि महोत्मव मनाना परम्परागत या रूढि मात्र ही नही है। क्योकि परम्परागत और रूढि की क्रिया मे तो प्राय हर्षोल्लास का अभाव ही पाया जाता है। अत आचार्य हस्तीमलजी का परम्परागत, शाश्वत नियम जिताचार आदि शब्दो का प्रयोग करना नितान्त भ्रान्तिपूर्ण ही है। अगर देव फार्मोलिटी पूरी करते यानी रीत-रश्म निभाने हेतु ही महोत्सव मनाते तो "बडा हर्षोल्लास" नही आता। सिर्फ खाना पूर्ति ही करनी होती तो नदीश्वर द्वीप मे जाकर लगातार आठ दिन का महोत्सव मनाना और वह भी "बडे हर्षोल्लास से" यह परम्परा से सभव नही हो सकता जैसा कि उनका कहना है।

देव और देवेन्द्रो के दिल मे अपने तारक देवाधिदेव परमात्मा के प्रति इतनी अपार भक्ति है कि भगवान का जन्म-महोत्सव मेरुपर्वत पर भगवान को ले जाकर करने पर भी सतुष्ट न हुए, तो बाद मे भगवान को लाकर, माता को सौंपकर सब देवो ने नन्दोश्वर द्वीप मे जाकर, वहाँ स्थित शाश्वत जिनमन्दिरो मे लगातार आठ दिन का अपार भक्तिवश अष्टाह्निक महोत्सव मनाया। केवल जिताचार, परम्परागत ऐसे तुच्छ शब्दो का प्रयोग करके और नन्दीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिरो का उल्लेख न करके आचार्य ने इन देव-देवेन्द्रो की अपार भक्ति की महिमा को कम करने का एव सत् वस्तु "नन्दीश्वरद्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिरो का" विरोध करने का निर्लज्ज प्रयास किया है, जो सर्वथा अनुचित है।

प्रभुभक्ति की महिमा देवो के दिल मे कैसी बसी है इस विषय मे "श्री पच प्रतिक्रमण सूत्र" मे पूर्वाचार्य लिखते है कि—

येषामभिषेक कर्मकृत्वा, मत्ता हर्ष भरात् सुख सुरेन्द्रा ।
तृणमपि गणयन्ति नैव नाक, प्रात सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्रा ॥

अर्थात—जिन तीर्थंकर परमात्माओ का अभिषेक कार्य करके हर्षवश मस्त सुरेन्द्र स्वर्ग सुख को तृणमात्र भी नही गिनते, वे जिनेन्द्र भगवान प्रात काल मे शिवसुख [निरुपद्रवता कल्याण] के लिये हो।

देव-देवेन्द्रो मे भगवान के प्रति अपार भक्ति कैसी है कि वे देवलोक के सुखो को प्रभुभक्ति के आगे तृण बराबर भी नही गिनते हैं।

देव-देवेन्द्रो की अपार भक्ति के दृष्टान्त से तो आचार्य को परमात्मा पर अपार भक्ति करना सीखना चाहिए, यह भक्ति तीर्थंकर नामकर्म का बध कराती है। किन्तु आचार्य की हठधर्मिता देखो कि देव-देवेन्द्रो जैसी भगवद् भक्ति सीखना तो दूर रहा, किन्तु परम्परागत जैसे हल्के शब्दो को लिखकर उन देव-देवेन्द्रो की भक्ति की महिमा घटा रहे हैं और नन्दीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिर के तथ्य को छिपाने का अशोभनीय प्रयास कर रहे हैं। जिसके दिल मे तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति का अश मात्र भी न हो, क्या वह देवो की अपार, भक्ति का मूल्य कर सकता है ? तथा जैनागमो पर सच्ची श्रद्धा का अभाव वाला व्यक्ति क्या नन्दीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिरो के सत्य को स्वीकार कर सकता है ? सच ही कहा है—

जाके दिलमें झूठ बसत है,
ताको सत्य न भावे।

भक्त के मन मे मुक्ति से भी प्रभुभक्ति का मूल्य अधिक होता है।
—न्यायविशारद पू० यशोविजयजी उपाध्यायजी

[प्रकरण ३]

शा न रक्ष दे -देि ां

जैनधर्म मे शासन रक्षक देव-देवियो की मान्यता मूर्तिपूजा जितनी ही प्राचीन है। चौबीस भगवान के शासनरक्षक देव यक्ष-यक्षिणी होते हैं, जो समय-समय पर आकर जैनशासन की रक्षा एव जैनशासनोन्नति के कार्यों को करते हैं। उनकी ऐसी अनुमोदनीय प्रवृत्ति की अनुमोदना हेतु प्रतिक्रमण मे भवनदेवी श्रुतदेवी, आदि का प्रशसा सूचक काउस्सग्ग भी किया जाता है। इन देव-देवियो के विषय मे आचार्य हस्तीमलजी खड-१, पृ० १८ 'अपनी बात' मे लिखते हैं कि—

❋❋❋ प्रत्येक तीर्थंकर के शासन-रक्षक यक्ष-यक्षिणी होते हैं, जो समय समय पर शासन की सकट से रक्षा और तीर्थंकरो के भक्तो की इच्छा पूर्ण करते रहते हैं। ❋❋❋

मीमासा—यद्यपि आगमिक तथ्य होते हुए भी स्थानकपथी एव आचार्य हस्तीमलजी इन देव-देवियो मे विश्वास नही करते हैं। फिर भी उक्त तथ्य लिखना भोले जनो को धोखा देना मात्र ही है। खड-१, पृ० ७८८ पर आचार्य द्वारा "तीर्थंकर परिचय पत्र" बहुत लम्बा-चौडा दिया गया है। इसकी प्रशसा कुछ विद्वानो ने की है। इस परिचय-पत्र मे तीर्थंकर भगवान के दीक्षा के साथी, प्रथम तप, प्रथम पारणा दाता, छद्मस्थ काल आदि अनेकविध माहिति सदृब्ध की गयी है। किन्तु इस विशाल परिचयपत्र मे चौवीस तीर्थंकरो के

यक्षिणी का परिचय एव चित्र द्वारा मार्गदर्शन तो दूर नाम तक नही दिया है। इसके कारण ही यह परिचय-पत्र आचार्य के पक्षपातित्व का परिचायक मात्र है। वरना प्रसगोपात् वहा यक्ष-यक्षिणी का नाम एव परिचय देना अत्यन्त आवश्यक था। इतिहासकार को सत्य हकीकत लिख देना चाहिए किन्तु अभिनिवेश वश आचार्य ने चौवीस तीर्थंकरो के शासन रक्षक देव-देवियो के साथ पक्षपात कर "तीर्थंकर परिचय पत्र" को भी अपूर्ण ही रखा है।

देव-देवियो के विषय मे आचार्य दुरगी नीति रीति अपना रहे हैं। इस विषय मे इनके इतिहास मे स्वीकार और इन्कार दोनो साथ साथ चलते है, जो अनुचित तरीका है। एक अन्य पुस्तक "सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी" जो सर्वथा शास्त्र निरपेक्ष होने के कारण कल्पित है, इसमे आचार्य लिखते हैं कि—"देव देविया कुछ देते नही हैं।" किन्तु आगमिक तथ्य इससे बिलकुल विपरीत ही है। क्योकि आचार्य ही लिखते हैं कि कृष्ण की माता देवकी को कृष्ण द्वारा तेले (अट्ठम) के तप पूर्वक हरिणैगमेषी देव की आराधना करने से गजसुकुमाल नामक पुत्र मिला था। खड—१, पृ० ३९४ पर यथा—

❋ ❋ ❋ देवकी के मनोरथ की पूर्ति हेतु कृष्ण ने तीन दिन का निराहार तप कर देव का स्मरण किया। एकाग्रमन द्वारा किया गया चिन्तन इन्द्र-महेन्द्र का भी हृदय हर लेता है, फलस्वरूप हरिणैगमेषी का आसन डोलायमान हुआ। वह आया। ❋ ❋ ❋

❋ ❋ ❋ (हरिणैगमेषी) देव ने कहा—देव लोक से निकलकर एक जीव तुम्हारे सहोदर भाई के रूप मे उत्पन्न होगा। ❋ ❋ ❋

मीमासा—आचार्य द्वारा कथित उक्त तथ्य से यह सिद्ध होता है कि देव-देविया कुछ देते हैं। अगर देव की सहायता से पुत्र प्राप्ति

रूप कार्य नही होता तो तीन दिन का निराहार तप करके उनको बुलाना व्यर्थ ही था। ऐसी दशा मे "सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी" किताब मे देव-देविया कुछ देते नही हैं ऐसा आचार्य का लिखना सर्वथा झूठ ही रहा।

अपर च वैरोट्या देवी के विषय मे खड—२ पृ० ५५० पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ भगवान पार्श्वनाथ के चरणो मे भक्ति रखने वाले भक्तो के कष्टो का निवारण करने मे वह (वैरोट्यादेवी धरणेन्द्र की महिषी) समय समय पर उनकी सहायता करने लगी। ☼ ☼ ☼

मीमासा—इन तथ्यो से इस बात की सिद्धि होती है कि स्थानकपथी लोग जो देव-देवियो के विषय मे भ्रमपूर्ण बात लिखते मानते हैं, उनका यह भ्रम दूर हुआ होगा।

खड—१, पृ० ५२४ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ श्रद्धालु भक्तो की यह निश्चित धारणा है कि इन (पद्मावती, काली, महाकाली आदि) देवियो (धरणेन्द्र आदि) देवो और देवेन्द्रो ने समय समय पर शासन की प्रभावना की है। इसका प्रमाण यह है कि धरणेन्द्र और पद्मावती के स्तोत्र आज भी प्रचलित हैं। ☼ ☼ ☼

मीमासा—"श्रद्धालु भक्तो की यह धारणा है" ऐसा लिखने का अर्थ तो यही हो सकता है कि अश्रद्धालु होने के कारण आचार्य की ऐसी धारणा नही है। यानी स्थानकपथी आचार्य हस्तीमलजी शासन रक्षक देव-देवियो मे अविश्वास करते है, किन्तु यह जैनागम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य का ही अविश्वास एव अनादर करने के बराबर है। खड—२, पृ० ५५० पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼☼☼ कहा जाता है कि आचार्य नन्दिल ने वैरोट्या के स्तुति परक "नमिऊण जिण पास" इस मत्र गर्भित स्तोत्र की रचनाकर वैराट्या की स्मृति को चिरस्थायी बनाया। ☼☼☼

मीमासा—देव-देवियो की बात स्पष्ट रूप से आगम शास्त्रो मे कथित है। फिर भी 'कहा जाता है" ऐसा आचार्य का लिखना अन्याय ही है। श्री भगवती सूत्र मे सूत्रकार महर्षि ने भी यक्ष-यक्षिणियो का लिपिबद्ध मगल किया है।

द्वादशागी के पाचवे अग भगवती सूत्र के विषय मे आचार्य हस्तीमलजी खण्ड-२ पृ० १७० पर लिखते हैं कि—

☼☼☼ द्वादशागी के पाचवें अग "व्याख्या प्रज्ञप्ति" [अपरनाम श्री भगवती सूत्र] की आदि मे "पचपरमेष्ठी नमस्कार मत्र", "णमो बभीए लिवीए" और णमो सुयस्स पद से मगल किया है और अन्त मे सघ स्तुति के पश्चात् गौतमादि गणधरो, भगवती व्याख्या प्रज्ञप्ति, द्वादशागी रूप गणिपिटक, श्रुतदेवता, प्रवचनदेवी, कुभधर यक्ष, ब्रह्मशाति, वैरोट्यादेवी, विद्यादेवी और अतहुडी को नमस्कार किया गया है। ☼☼☼

मीमासा—यहा स्वय सूत्रकार महर्षि ने अन्तिम मगल के रूप मे कुम्भधर यक्ष वैरोट्यादेवी आदि को नमस्कार किया है। इतना ठोस आगम वचन होते हुए भी आचार्य का पक्षपात देखो कि देव-देवियो के विषय मे 'ऐसा माना जाता है", "ऐसा कहा जाता है" ऐसे घटिया शब्दो का प्रयोग करके अप्रमाणिकता कर रहे हैं। महान जैनाचार्य श्री नन्दिल के विषय मे आगमिक तथ्य सत्य होते हुए भी "कहा जाता है" ऐसा आचार्य लिखते हैं, जो आचार्य के अनिश्चित चित्त का परिचायक है। किन्तु ऐसी अनिश्चितता और अप्रमाणिक बातें तो इस कल्पित इतिहास मे जगह जगह लिखी मिलती है। खड—२, पृ० ६४६ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼☼☼ भयहर स्तोत्र भी आचार्य मानतु ग की रचना मानी जाती है। ☼☼☼

मीमासा—'मानी जाती है' ऐसा सदिग्ध लिखकर आचार्य अपने इतिहास को कौडी की कीमत का कर रहे है क्योकि इतिहास के लेखन मे सत्य कथनो को ऐसे सदिग्ध रूप मे लिखना दोषपूर्ण होता है।

शासन रक्षक देव-देविया अवसर पर आकर तीर्थंकर के भक्तो के सकट निवारण करते हैं, इस विषय मे श्री स्थूलिभद्र महामुनि की बहिन साध्वी यक्षा की बात आगम प्रसिद्ध है, जो शासन रक्षक देवी की सहायता से श्री सीमधर भगवान के पास गयी थी। इस विषय मे खड–२, पृ० ७७६ पर आचार्य लिखते है कि—

☼☼☼ यदि कोई कहदे कि (भाई साधु श्रीयक की मौत के विषय मे) यक्षा निर्दोष है, तभी मै (यक्षा) अन्न-जल ग्रहण करूगी अन्यथा नहीं। ☼☼☼

☼☼☼ अन्ततोगत्वा शासनाधिष्ठात्री देवी की सघ ने आराधना की और दैवी सहायता से आर्या यक्षा महाविदेह क्षेत्र मे श्रीमदरस्वामी के समवसरण मे पहुंची। ☼☼☼

☼☼☼ दैवी सहायता से आर्या पुन लौट आयी। ☼☼☼

मीमासा—उक्त बात से यह स्पष्ट है कि देव-देविया जैन-शासन की सहायता करते हैं। बडे बडे आचार्यों ने भी उनकी भक्ति की अनुमोदनार्थ स्तोत्र रचे हैं। उनके शासन सेवा की अनुमोदना निमित्त प्रतिक्रमण मे कायोत्सर्ग भी किया जाता है। जिन प्रतिमा की तरह देव-देवियो की प्राचीन मूर्तिया भी जमीन मे से निकलती हैं, इस ध्वसावशेष प्रतिमा की चौकियो पर उट्ट कित लेख से यह भी निर्णय होता है कि पूर्वाचार्यो ने ही इन शासन रक्षक देव-देवियो की मूर्ति की

प्रतिष्ठा करवायी थी। श्री भगवती सूत्र आदि आगम शास्त्रो मे भी देव-देवियो की बात आती है। आदि अनेक तथ्य होते हुए भी आचार्य हस्तीमलजी यक्ष-यक्षिणी के विषय मे प्रकाश मे आना पसन्द नही करते है, यह उनका गहरा पक्षपात ही है।

आगरा लोहामडी से छपी 'मगलवाणी' किताब, सकलनकर्ता स्थानकपथी अखिलेशमुनि ने पृ० ३५४ (ग्यारहवाँ सस्करण) पर "घटाकर्ण महावीर का मत्र" दिया है, और इसको २१ बार गिनने पर भूत-प्रेतादि पीडा नाश होती है ऐसा लिखा है। जब स्थानकपथियो को "घटाकर्ण महावीर" के विषय मे पूछते हैं तब वे इस विषय मे कुछ नही बताते हैं। किन्तु इस "घटाकर्ण महावीर मत्र" से भी स्थानकमार्गी द्वारा देव-देवियो के तथ्य को पुष्टि तो अवश्य होती ही है। फिर सत्य-तथ्य को स्वीकारने मे इन्कार क्यो ?

अनेकान्त का समुचित बोध रहित सम्यग्दर्शन द्रव्य सम्यग्दर्शन है।

—पू० यशोविजयजी उपाध्याय महाराज
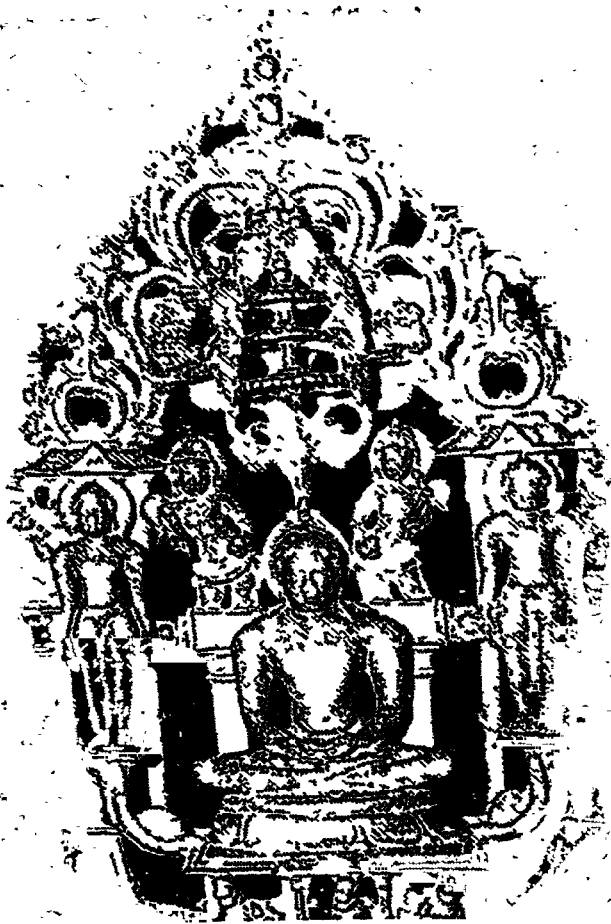
अत्यन्त प्राचीन भव्य जिन प्रतिमा जो
जरमनी के संग्रहालय मे है ।

[प्रकरण-४]

ो ॅ रों ो ा ा ` र्भ में ो पू ो ा

जब जगत्वद्य तीर्थंकर परमात्मा माताकी कुक्षि मे आते हैं तब भी पूजनीय होते हैं। वैसे माता की कुक्षि मे आये हुए तीर्थंकर द्रव्य तीर्थंकर हैं, फिर भी वे देवेन्द्रो के भी पूजनीय बनते हैं। तो फिर "देवा वि त नमसति" इस आगमवचनानुसार जन सामान्य के भी पूजनीय बनें इसमे आश्चर्य ही क्या ? तीर्थंकर परमात्मा माता की कुक्षि मे आते हैं तब देवेन्द्र सिहासन पर से नीचे उतर जाता है, उत्तरासग करके अपने सिहासन से सात-आठ कदम आगे चलकर भगवान जिस दिशा मे हो उसी दिशा मे प्रणाम करके भगवान की स्तुति स्वरूप "शक्रस्तव" [नमुत्थुरण] सूत्र बोलता है। उक्त बात श्री कल्पसूत्र शास्त्र मे १४ पूर्वधर श्री भद्रबाहुस्वामी ने भी कही है। आचार्य हस्तीमलजी खड १, पृ० १५ पर लिखते हैं कि—

❂❂❂ सर्व प्रथम उन्होने (चौसठ इन्द्रो ने) सिहासन से उठ प्रभु जिस दिशा मे विराजमान थे उस दिशा मे उत्तरासंग किये, सात-आठ कदम आगे जा प्रभु को प्रणाम किया। ❂❂❂

मीमासा—श्री कल्पसूत्र शास्त्र मे कहा है कि शक्र 'नमुत्थुरण' सूत्र का पाठ बोलता है। फिर भी मनमानी करके आचार्य ने शक्रस्तव के कथन को छिपा ही लिया है, क्योंकि माता की कुक्षि मे आये हुए तीर्थंकर द्रव्य तीर्थंकर हैं, उनको भी आदिकर, तीर्थंकर आदि ३३

[प्रकरण-४]

ी ैरों ो ा ा ` र्भ में ी पू ी ा

जब जगत्वद्य तीर्थंकर परमात्मा माताकी कुक्षि मे आते है तब भी पूजनीय होते हैं। वैसे माता की कुक्षि मे आये हुए तीर्थंकर द्रव्य तीर्थंकर हैं, फिर भी वे देवेन्द्रो के भी पूजनीय बनते हैं। तो फिर "देवा वि त नमसति" इस आगमवचनानुसार जन सामान्य के भी पूजनीय बनें इसमे आश्चर्य ही क्या ? तीर्थंकर परमात्मा माता की कुक्षि मे आते हैं तब देवेन्द्र सिहासन पर से नीचे उतर जाता है, उत्तरासग करके अपने सिंहासन से सात-आठ कदम आगे चलकर भगवान जिस दिशा मे हो उसी दिशा मे प्रणाम करके भगवान की स्तुति स्वरूप "शक्रस्तव" [नमुत्थुणं] सूत्र बोलता है। उक्त बात श्री कल्पसूत्र शास्त्र मे १४ पूर्वधर श्री भद्रबाहुस्वामी ने भी कही है। आचार्य हस्तीमलजी खड १, पृ० १५ पर लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ सर्व प्रथम उन्होने (चौसठ इन्द्रो ने) सिंहासन से उठ प्रभु जिस दिशा मे विराजमान थे उस दिशा मे उत्तरासग किये, सात-आठ कदम आगे जा प्रभु को प्रणाम किया। ❂ ❂ ❂

मीमासा—श्री कल्पसूत्र शास्त्र मे कहा है कि शक्र 'नमुत्थुणं' सूत्र का पाठ बोलता है। फिर भी मनमानी करके आचार्य ने शक्रस्तव के कथन को छिपा ही लिया है, क्योकि माता की कुक्षि मे आये हुए तीर्थंकर द्रव्य तीर्थंकर है, उनको भी आदिकर, तीर्थंकर आदि

विशेषणो से श्री कल्पसूत्रशास्त्रकार द्वारा समादर किया गया है, यह बात आचार्य को स्वमान्यता विरोधक होने से कांटे की तरह चुभनेवाली है, अत उन्होने अप्रमाणिकता पूर्वक श्री कल्पसूत्र शास्त्र कथित 'नमुत्थुण' का पाठ छिपाया है। किन्ही जीवो को मिथ्यात्व का उदय ही इतना अभिनिवेश पूर्ण होता है कि वह सत्य को सत्य रूप मे लिखने तक नहीं देता।

पूज्य तीर्थंकर प्रत्येक अवस्था मे पूजनीय-वदनीय हैं, इस विषय मे भावि तीर्थंकर श्री महावीर भगवान के पूर्व भवधारी मरीचि को प्रथम चक्रवर्ती भरत द्वारा प्रणाम करना शास्त्र प्रसिद्ध दृष्टान्त है। भरत चक्रवर्ती के उत्तर मे श्री ऋषभदेव भगवान ने कहा कि—"हे भरत! तेरा पुत्र मरीचि भावि २४ वां तीर्थंकर होगा। तब जाकर भरत ने त्रिदण्डी तापस वेश धारक मरीचि को प्रणाम किया। उक्त बात को खड १, पृ० ११६ पर आचार्य भी व्यक्त करते हैं, यथा—

☼ ☼ ☼ मरीचि के पास जाकर उसका अभिवादन करते हुए (भरत) बोले—"मरीचि! तुम तीर्थंकर बनोगे इसलिये तुम्हारा अभिवादन करता हू। मरीचि! तेरी इस प्रवज्या को एव वर्तमान जन्म को वदन नहीं करता हूँ, किन्तु तुम जो भावी तीर्थंकर बनोगे इसलिये मै वदन करता हूं।" ☼ ☼ ☼

मीमासा—भावि तीर्थंकर को भी सम्यग्दृष्टि भरत वदन करते हैं, इस तथ्य से यह सत्य सिद्ध होता है कि कोहिनूर हीरा भले चाहे खान मे पडा हो, कोहिनूर ही है। वैसे ही तीर्थंकर परमात्मा भी सदैव वदनीय एव पूजनीय हैं।

शास्त्रीय कथन होते हुए भी द्रव्य तीर्थंकर को पूजनीयता मे अविश्वास करने वाले आचार्य अपनी नाराजगी प्रगट करते हुए कहते हैं कि—

☼☼☼ भरत द्वारा भावि तीर्थंकर मरीचि को प्रणाम करना मूल जैनागमो मे दृष्टिगोचर नहीं होता है, किन्तु कथाग्रन्थो मे ऐसी बात लिखी है। ☼☼☼

किन्तु ऐसी अप्रमाणिक बात लिखने वाले आचार्य हस्तीमलजी को यह बताना चाहिए कि श्री महावीर स्वामी के जीव ने किस जगह, किस समय कौन से कारण नीच गोत्र का बंध किया था, जिसके प्रभाव से श्री महावीर स्वामी के भव मे उनको ब्राह्मणी की कुक्षि मे पैदा होना पड़ा था।

सुभूम चक्रवर्ती, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, चन्द्रगुप्त चाणक्य का कथानक, सगर चक्रवर्ती को वैराग्य, श्री महावीर स्वामी के सत्ताईस भव, नदवश की स्थापना आदि अनेक बाते आगम ग्रन्थो मे नही होते हुए भी आचार्य ने कथा ग्रन्थो के सहारे ही लिखी हैं। फिर इस बात मे सदेह क्यो ?

आर्या चदनबाला के विषय मे खड १, (पुरानी आवृत्ति) पृ० ३४५ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼☼☼ चन्दना ने जब कुछ समय बाद यौवन मे पदार्पण किया तो उसका अनुपम सौंदर्य शतगुणित हो उठा। उसकी कज्जल से भी अधिक काली केशराशि बढकर उसकी पिण्डलियो से अठखेलिया करने लगी। ☼☼☼

मीमासा—आर्या चदनबाला के विषय मे उक्त बात इतिहासकार ने कौन से मूलागम के आधार पर लिखी है, यह प्रामाणिकता पूर्वक कहना चाहिए एव नदवश की स्थापना के अवसर पर खड २, पृ० २६८ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ उदायी का राज छत्र भी स्वत ही नन्द के मस्तक पर तन गया और नन्द के दोनो ओर मन्त्राधिष्ठित वे दोनो चामर स्वत ही अदृश्य शक्ति से प्रेरित हो, व्यजित होने लगे। ☼ ☼ ☼

मीमासा—उक्त बात भी इतिहासकार आचार्य ने कौन से मूलागम मे से लिखी है? इतना ही नही आचार्य के माने हुए ३२ मूलागम या एकादश अग के मूलपाठ मे कही भी सामायिक की विधि, प्रतिक्रमण की विधि, पोसह की विधि का उल्लेख नही है। तो फिर सामायिक, प्रतिक्रमण और पौषध आदि की विधि वे कौन से आधार पर कर रहे है? सच तो यह है कि आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य भी हमारे लिये उतना ही विश्वसनीय है जितना आगमशास्त्र। क्योकि आगमेतर जैन साहित्य के रचयिता वे जैनपूर्वाचार्य हैं जो पचमहाव्रत धारक एव उत्सूत्रभाषण के वज्रपाप से डरने वाले भवभीरु थे।

कलिकाल सर्वज्ञ पूज्यपाद् श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज रचित "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" मे भरत ने भावि तीर्थंकर मरीचि को प्रणाम किया था ऐसी बात आती है और "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" विश्वसनीय है इस बात को आचार्य स्वय ही खड २, पृ० ५६ पर कहते हैं—

☼ ☼ ☼ यह है आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा विरचित त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र का उल्लेख जो पिछली आठ शताब्दियो से भी अधिक समय से लोकप्रिय रहा है। ☼ ☼ ☼

मीमासा—बहुत सी ऐसी बातें हैं जिसको प्रमाणित करने के लिये आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य का ही एकमात्र प्रमाणिक सहारा और सच्चा आधार है। फिर भी मरीचि को भरत द्वारा किये गये प्रणाम के विषय मे आचार्य का लिखना कि—"ऐसी कोई बात आगमो

मे नही है" बिल्कुल अनुचित एव कृतघ्नता का सूचक है। यह कैसा गूढाचार है कि इतिहास की पुष्टि मे सहारा लेना त्रिषष्ठि शलाका पुरुष आदि चरित्रो का और स्थानकपथी स्वमान्यता से विरोध आये वहाँ बोल उठना कि मूलागमो मे ऐसी कोई बात आयी नहीं है ! कैसी हास्यास्पद बात आचार्य कर रहे हैं, गुड खाना और गुलगुलो से परहेज !

जैनागम एव आगमेतर जैन ग्रन्थो मे नाम एव स्थापना की तरह द्रव्य तीर्थंकर भी वदनीय माने गये हैं। यह सत्य तथ्य एक प्रामाणिक इतिहासकार को स्वीकार करना चाहिए।

अभवि एव दुर्भवि को जैनागम एव आगमेतर जैन साहित्य कथित बात नहीं सुहाती है, जैसे उल्लू को प्रकाश।

[प्रकरण-५]

ी र ार गु

राग-द्वेष विजेता तीर्थंकर श्री अरिहत परमात्मा के बारह गुणो मे कुछ कपट का सहारा लेकर आचार्य हस्तीमलजी खड १, पृ० ६१ पर इस प्रकार लिखते हैं कि—

❋❋❋ (१) अनन्तज्ञान (२) अनतदर्शन (३) अनत चारित्र यानी वीतराग भाव (४) अनतबल-वीर्य (५) अशोकवृक्ष (६) देवकृत पुष्पवृष्टि (७) दिव्यध्वनि (८) चामर (९) स्फटिक सिंहासन (१०) छत्रत्रय (११) आकाश मे देवदुन्दुभि और (१२) भामन्डल।

पाच से बारह तक के आठ गुणो को प्रातिहार्य कहा गया है। भक्ति-वश देवो द्वारा यह महिमा की जाती है। ❋❋❋

मीमासा—पाच से बारह तक के आठ गुणो को देवकृत कहने पर भी छट्ठे गुण मे "देवकृत पुष्पवृष्टि" ऐसा लिखना आचार्य की अप्रमाणिकता ही है। "देवकृत पुष्पवृष्टि" लिखने पर तो देवकृत अशोकवृक्ष, देवकृत दिव्य ध्वनि ऐसा भी लिखना चाहिए। फिर "पाच से बारह तक के आठ गुणो को प्रातिहार्य कहा गया है, भक्तिवश देवो द्वारा यह महिमा की जाती है।" ऐसा लिखने की आवश्यकता नही थी, फिर भी क्यो लिखा ?

उक्त बारह गुणो के विषय मे "देवकृत अशोकवृक्ष" न लिखकर और "देवकृत पुष्पवृष्टि" ऐसा लिखने के पीछे आचार्य का अभिप्राय यह रहा होगा कि देवो द्वारा भगवान के समवसरण मे अचित (निर्जीव) पुष्पो की वृष्टि होती है। जबकि पूर्वाचार्यों ने सचित्त पुष्पवृष्टि का भी होना शास्त्रो मे लिखा है। "तुष्यतु दुर्जन न्यायेन" यह मान भी लिया जाए कि अहिंसा धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकर परमात्मा की उपस्थिति मे सचित पुष्पो की वृष्टि (वर्षा) न करके देवगण अचित पुष्पो की वृष्टि करते थे, जो कि अहिंसक हैं, फिर भी पुष्पवर्षा से वायुकाय की हिंसा तो अवश्य होती ही होगी ? इसका जवाब आचार्य क्या देंगे ?

और चँवर डुलाने आदि मे वायुकाय के जीवो की हिंसा भी विचारणीय है।

आचार्य ने बारह गुणो का वर्णन अपने इतिहास मे नही किया है। रथ मुसल युद्ध चद्रगुप्त चाणक्य का कथानक, ब्रह्मदत्त और सुभूम आदि के विषय मे फालतू लम्बी चौडी बाते लिखने वाले आचार्य ने अत्यन्त उपादेय तीर्थंकर परमात्मा के गुणो का वर्णन नही किया है यह सखेद आश्चर्य की बात है। इसके साथ एक बात और भी है कि गुण-गुणी मे रहते हैं, जैसे कि तीर्थंकर परमात्मा मे ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण रहते हैं। किन्तु सिंहासन, छत्र, चवर, अशोकवृक्ष जो गुणी मे नही रहते हैं फिर भी इनको तीर्थंकर परमात्मा (गुणी) के गुण क्यो कहा है ? इस प्रकार के स्पष्टीकरण की अत्यन्त आवश्यकता थी। जिसकी अपूर्णता ही अपने इतिहास मे आचार्य ने रखी है जो उनकी अनभिज्ञता की भी सूचक मानी जाएगी।

स्वत सिद्ध तथ्यो जैसे कि महावीर भगवान का गर्भापहार, भरतचक्री की षट् खड साधना, ऋषभदेव भगवान का ४०० दिन का

व्रत, पचमी की चौथ आदि विषयो मे अनावश्यक पिष्टपेषण करके "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" नामक ग्रथ मे थोथे का कद बढाने वाले आचार्य ने तीर्थंकर के परम उपादेय बारह गुणो का वर्णन नही किया है, यह बात उनकी तीर्थंकर परमात्मा के प्रति न्यूनभक्ति का परिचय कराती है।

अन्य बात यह भी है कि देवो की चँवर ढुलाने एव पुष्पवृष्टि आदि प्रवृत्ति का आप्त भगवान ने काम-भोग की तरह निषेध भी नही किया है। और ऐसी आडम्बर युक्त प्रवृत्ति मे लगने की बजाय देवता शातचित्त से धर्मदेशना ही क्यो नही सुनते ? ऐसे प्रश्नो का स्पष्टीकरण भी आवश्यक था। इसकी भी अपूर्णता इस इतिहास मे पायी गयी है। इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि आचार्य को अन्य बातो मे जितनी रुचि है इतनी रुचि अरिहत परमात्मा के गुणगान मे नही है। आगे हम लिख चुके हैं कि आर्या चन्दनबाला के विषय मे आचार्य लिखते हैं कि—

✱✱✱ चवना ने जब कुछ समय बाद यौवन मे पदार्पण किया तो उसका अनुपम सौंदर्य शतगुणित हो उठा। उसकी कज्जल से भी अधिक काली केशराशि बढकर उनकी पिण्डलियो से अठखेलिया करने लगी। ✱✱✱

मीमासा—ऐसी अनावश्यक बातो की रुचि कम होने पर ही तीर्थंकर परमात्मा के बारह गुणो का गुणगान हो सकता है। अवसर प्राप्त अत्यन्त उपादेय तीर्थंकर के बारह गुणो का गुणगान न करना, गुण-गुणी मे रहते हैं फिर अष्टप्रातिहार्य बाहर रहते हुए भी अरिहत के गुण कैसे ? भगवान ने उनकी उपस्थिति मे होती दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि आदि का निषेध क्यो नही किया है ? ऐसे अनेक प्रश्नो को अस्पष्ट

रखकर आचार्य ने जैनधर्म के तीर्थंकरो के इतिहास के विषय मे अपनी अनभिज्ञता एव अज्ञता सूचित की है। तथ्य तो यह है कि वैतनिक पडितो के बल बूते पर इतिहास की रचना करवा लेना आसान है किन्तु बिना गुरुगम ऐसे प्रश्नो का रहस्य पाना आसान नही है।

आश्रवो को हेय-त्याज्य कहकर छुडवाने वाले आप्त तीर्थंकरो ने देवो द्वारा की गयी दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चँवर ढुलाना आदि प्रवृत्ति को त्याज्य नही कहा है, अन्यथा काम भोग की तरह उनका भी आप्त भगवान अवश्य निषेध करते।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय

[प्रकरण–६]

ग्री ऋ ।ि ि ौर । नदा ।

तीर्थंकर परमात्मा का निर्वाण होता है तब देव-देवेन्द्र आते हैं, भगवान के पावन देह को स्नान कराकर चन्दनादि का विलेपन करते हैं। भगवान के देह को चन्दन की चिता पर जलाया जाता है। बाद मे भगवान की पावनदाढा देव देवलोक मे ले जाते हैं। देव भगवान के शरीर के अवशेषो का आदर एव पूज्य भाव से सेवा-पर्युपासना करते हैं। अष्टापदगिरि पर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान का निर्वाण हुआ। इस विषय मे आचार्य हस्तीमलजी खड १, पृ० १३१ पर लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ भगवान ऋषभदेव का निर्वाण होते ही सौधर्मेन्द्र शक्र आदि ६४ देवेन्द्रो के आसन चलायमान हुए। वे सब इन्द्र अपने अपने विशाल देव परिवार और अद्भुत् दिव्य ऋद्धि के साथ अष्टापद पर्वत के शिखर पर आये। देवराज शक्र की आज्ञा से देवो ने तीन चिताओ और तीन शिविकाओ का निर्माण किया। शक्र ने क्षीरोदक से प्रभु के पार्थिव शरीर को और दूसरे देवो ने गणधरो तथा प्रभु के शेष अन्तेवासियो के शरीरो को क्षीरोदक से स्नान करवाया। उन पर गोशीर्ष चदनका विलेपन किया। ❋ ❋ ❋

❋ ❋ ❋ शक्र की आज्ञा से अग्निकुमारों ने क्रमश तीनो चिताओ मे अग्नि की विकुर्वणा की और वायुकुमार देवो ने अग्नि को प्रज्वलित किया। ❋ ❋ ❋

✲ ✲ ✲ सभी देवेन्द्रो ने अपनी अपनी मर्यादा के अनुसार प्रभु की दाढ़ों और दातो को तथा शेष देवो ने प्रभु की अस्थियो को ग्रहण किया। ✲ ✲ ✲

मीमासा—उक्त कथन मे आचार्य ने "मर्यादा के अनुसार" ऐसा लिखकर कपट करना चाहा है क्योकि सिर्फ "मर्यादा के अनुसार" लिखना एकान्तवाद होने से अनुचित है। स्थानकमार्गी अमोलक ऋषि कृत जबूद्वीप प्रज्ञप्ति के पृ० १०० पर लिखा है कि—

✲ ✲ ✲ कितनेक देव तीर्थंकरो की भक्ति के वश से, कितनेक अपना जीताचार समझ के और कितनेक ने धर्म जानकर (दाढो को) ग्रहण किया। ✲ ✲ ✲

शास्त्र पाठ यथा—

✲ ✲ ✲ "केई जिण भत्तिए केई जीयमेयतिकट्टु केई धम्मोत्ति-कट्टु गिण्हति" ✲ ✲ ✲

मीमासा—'जबूद्वीप प्रज्ञप्ति' आगमानुसार देव तीर्थंकर की भक्तिवश और धर्म समझकर भी दाढो को ग्रहण करते हैं। इसप्रकार का आगमिक तथ्य होते हुए भी सिर्फ "मर्यादानुसार" लिखने मे आचार्य की एकान्तवादी हठधर्मिता ही माननी चाहिए। आचार्य को यह भूलना नही चाहिए कि यह लौकिक धर्मकरणी नही है, किन्तु लोकोत्तर धर्म करणी है।

तथा इतिहासकार आचार्य ने चालाकी पूर्वक तीर्थंकर परमात्मा की दाढो वदनीय एव पर्युपासनीय हैं और अस्थियाँ भी पूजनीय हैं इस सत्य तथ्य को भी गुप्त रखा है। स्थानकपथी अमोलक-ऋषि कृत श्री राजप्रश्नीय सूत्र का हिन्दी अनुवाद पृ० १६० पर लिखा है कि—

❋ ❋ ❋ उन वज्रमय गोल डब्बो मे बहुत जिनकी दाढो स्थाप रखी हैं, वे दाढो सूरियाम देव के, और भी बहुत से देव-देवियो के अर्चन या वन्दन-पर्यु पासनीय हैं। ❋ ❋ ❋

मीमासा—इतिहासकार आचार्य ने उक्त तथ्य को नही लिखने मे ही अपना श्रेय समझा है, जो अनुचित है। तीर्थंकर भगवान की दाढो वदनीय एव पर्यु पासनीय है और अस्थिया भी पूजनीय हैं। देव भगवान के शरीर का यत् किंचित् अवयव हाथ लगता है, उनको भी वे पूज्यदृष्टि से पूजकर अपना कल्याण समझते है। श्री राजप्रश्नीय सूत्र लिखित तथ्य को छिपा करके आचार्य ने अप्रमाणिकता की है।

तीर्थंकर परमात्मा की परम पावन आत्मा इस पावन दाढा मे भी रही थी इसके कारण यह शान्तरस से ऐसी भावित हो गयी है कि दो देव के बीच लडाई हो जाने पर इस पवित्र दाढा के अभिषेक जल को उन पर छिडकने से वे दोनो देव शान्त हो जाते हैं। अन्य देव भी भगवान की हड्डियो एव अन्य अर्धजलित अगो को ले जाते हैं, उनका भी अभिषेक आदि करते हैं। तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति का यह भी एक प्रकार है ऐसा शास्त्रीय उल्लेख होते हुए भी दाढो के विषय मे पर्यु पासना तथा वदन की बात आचार्य ने अपने इतिहास मे कोशो दूर छोड़ दी है जो सर्वथा अनुचित ही है।

दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त करने के बाद तत्त्वदर्शीको सूत्रोक्त-नीति के अनुसार वीतराग भाषित धर्म की आराधना करनी चाहिए। मनमानी कल्पना पर किये हुए धर्म की फूटी कौडी की भी कीमत नही है।

—१४४४ ग्रन्थ रचयिता पूज्य हरिभद्रसूरिजी महाराज

❋

[प्रकरण—७]

ी ष्टा गिरि र ि ंदिर

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान का अष्टापद पर्वत पर निर्वाण हुआ, वहाँ उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती ने सोने के मदिर बनवाकर चौबीसो भगवान के शरीर की ऊँचाई के प्रमाण रत्न की प्रतिमा चार, आठ, दस और दो के क्रम से चारो दिशाओ मे विराजमान की थी।

श्री ऋषभदेव भगवान की निर्वाण भूमि अष्टापद पर्वत के विषय मे आचार्य लिखते है कि—

✱✱✱ उन चार प्रकार के देवो ने क्रमश प्रभु को चिता पर, गणधरो की चिता पर और अणगारो की चिता पर तीन चैत्यस्तूप का निर्माण किया। ✱✱✱

मीमासा—प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान के निर्वाण स्थल पर देवो ने चैत्यस्तूप का निर्माण किया किन्तु श्री अजितनाथ, श्री सम्भवनाथ आदि तीर्थंकरो की निर्वाण भूमि पर देवो ने चैत्यस्तूप का निर्माण किया कि नही ? इस बात को आचार्य ने अस्पष्ट ही रखी है। आचार्य श्री मलयगिरिजी के कथनानुसार भरत ने चैत्यस्तूप का निर्माण करवाया था। खड १, पृ० १३१ पर आचार्य हस्तीमलजी पूज्यपाद श्री मलयगिरि महाराज के उद्धरण पूर्वक लिखते हैं कि—

☼☼☼ तथा भगवद्देहादिदग्धस्थानेषु भरतेन स्तूपा कृता, ततो लोकेपि तत आरभ्य मृतकदाहस्थानेषु स्तूपा प्रवर्त्तन्ते। [आवश्यक मलयगिरि] ☼☼☼

अर्थात्—भगवान के शरीर का जहाँ दाह हुआ था, उसी स्थान पर भरत ने स्तूप बनवाया, तब से लोक मे भी मृतकदाह स्थान पर स्तूप बनवाने की प्रवृत्ति शुरु हुई।

मीमासा—जिन चैत्य कहो या जिनस्तूप कहो या जिन मदिर कहो एक ही बात है। अपने पूज्य उपकारी श्री तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिकृति, प्रतिमा या पादुका मदिर आदि मे विराजमान करके उनकी अनुपस्थिति मे उनकी चरणपादुका, प्रतिमा आदि का वदन, पूजन, सत्कार एव सम्मान करके सम्यग्दर्शनवन्त भव्यजन प्रभुभक्ति करते हैं।

आगम शास्त्र मे भी भरत द्वारा जिन मदिर बनवाने का उल्लेख है। यथा श्री आवश्यक सूत्रान्तर्गत जगचिन्तामणि चैत्यवदन मे "अट्ठावय सठविय रूव, कम्मट्ठ विणासरण"। तथा सिद्धस्तव मे "चत्तारि अट्ठ दस दोय, वदिया जिरणवरा चउविस" इत्यादि। इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि चतुर्थ आरे की शुरुआत से ही जिनप्रतिमा, जिनपादुका और जिनमदिर थे और जिन प्रतिमा पूजा भी थी यह आगमिक सत्य है। इस तथ्य को प्रामाणिक और तटस्थ व्यक्ति इन्कार नही कर सकता। आचार्य प्रतिमा पूजा और जिनमन्दिर के सत्य तथ्य को स्वीकार नही करते हैं, यह उनकी भयकर भूल है। मूर्तिपूजा जैसे सत्य विषय को विवादास्पद बनाना और उसके ऐतिहासिक तथ्यो से इन्कार करना सूर्य के सामने धूलि फैंकने की बालिश चेष्टा मात्र ही है।

श्री आवश्यक सूत्र मे भरत चक्रवर्ती के बनवाये जिनमदिर का अधिकार है।

यथा—

थुभसय भाउगाण चउव्विस चेव जिणघरेकासि ।
सव्वजिणाणे पडिमा, वण्ण पमाणेहिं नियएहि ।।

अर्थात्—एक सौ भाईयो के एक सौ स्तूप और चौबीस तीर्थंकर के जिनमन्दिर बनवाकर उसमे सर्व तीर्थंकर की प्रतिमा अपने वर्ण तथा शरीर के प्रमाण सहित (श्री अष्टापद पर्वत ऊपर भरत चक्रवर्ती ने) बनवायी ।

अष्टापदजी पर्वत पर भरतचक्रवर्ती ने मदिर बनवाये थे इस विषय मे दो प्राचीन इतिहास भी साक्षी देते हैं। एक "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" नामका इतिहास जो महाधुरधर विद्वान कलिकाल सर्वज्ञ पूज्य श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज ने रचा है और दूसरा "चउवन महापुरिस चरियम्" जो महान जैनाचार्य श्रीमद् शीलाकाचार्य द्वारा रचित है। उपरोक्त दोनो महान् ग्रन्थो मे भी अष्टापदगिरि पर भरतचक्रवर्ती द्वारा जिनमदिर बनवाने का उल्लेख है। यह दोनो महान् ग्रन्थ ऐसा भी कहते हैं कि दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान के चाचा सगरचक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रो ने इस अष्टापद तीर्थ की रक्षा मे प्राण गवाये थे । इस बात का उल्लेख आचार्य हस्तीमलजी ने "जैन धर्म का मौलिक इतिहास" पुस्तक मे खड १ पृ० १६५ पर किया है। यथा—

※※※ सहस्राशु आदि सगर के ६० हजार पुत्र चक्रवर्ती सगर की आज्ञा प्राप्त कर सेनापति रत्न, दण्ड रत्न आदि रत्नो और एक बडी सेना के साथ भरत क्षेत्र के भ्रमण के लिये प्रस्थित हुए। अनेक स्थानो मे भ्रमण करते हुए जब वे अष्टापद पर्वत के पास आये तब उन्होंने अष्टापद पर जिन मदिरो को देखा और उनकी सुरक्षा के लिये पर्वत के चारो ओर एक खाई खोदनेका विचार

किया । इन दोनो आचार्यो के उपरि उद्धृत ग्रन्थो मे उल्लेख है कि जह्नु आदि उन ६० हजार सगर पुत्रो ने भवनपतियो के भवन तक खाई खोद डाली । जह्नु कुमार ने दण्ड रत्न के प्रहार से गगानदी के एक तट को खोदकर गगा के प्रवाह को उस खाई मे प्रवाहित कर दिया और खाई को भर दिया । खाई का पानी भवनपतियो के भवनो मे पहुँचने से वे रुष्ट हुए और नागकुमारो के रोष वश उन ६० हजार सगर पुत्रो को दृष्टिविष से भस्मसात् कर डाला । ✲✲✲

मीमासा—आचार्य ने यहा कपट करके अष्टापद पर्वत पर जिनमदिर था इस तथ्य को आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजी और आचार्य श्री शीलागाचार्यजी के नाम से लिखकर स्वय को मदिर के विषय मे अलिप्त रखकर अन्याय पूर्ण कृत्य किया है । सत्य स्वीकारने का अवसर आया वहाँ चालाकी पूर्वक अन्य के नाम लिख देना बेईमानी ही मानी जायेगी । आश्चर्य तो यह है कि अन्य ऐतिहासिक प्रसग इन्ही ग्रन्थो मे से लेकर वहा आचार्य हस्तीमलजी ने ऐसा व्यक्त नही किया है कि पूर्वाचार्यों ने ऐसा लिखा है, किन्तु वहा तो उन्होने स्वय अपने नाम से ही लिख दिया है । फिर जिन मदिर और जिन प्रतिमा की बात आयी वहाँ ऐसा अन्याय क्यो ?

पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज और पूज्य शीलागाचार्यादि अनेक सुविहित पूर्वाचार्यों के नामोल्लेख करके आचार्य हस्तीमलजी खड–१ (पुरानी आवृत्ति) अपनी बात पृ० ६ पर लिखते हैं कि—

✲✲✲ उपरोक्त पर्यालोच के बाद यह कहना किंचित् मात्र भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि हमारा जैन इतिहास बहुत गहरी सुदृढ नींव पर खडा है । यह इधर उधर की किंवदन्ती या कल्पना के आधार से नहीं पर प्रामाणिक पूर्वाचार्यों की अविरल परम्परा से प्राप्त है । अत इसकी विश्वसनीयता मे लेशमात्र भी शका की गु जाइश नहीं रहती । ✲✲✲

मीमासा—उपरोक्त सत्य तथ्य लिखने वाले आचार्य हस्तीमलजी की कूटनीति देखो कि वे स्वयं श्री अष्टापद गिरि पर जिन-मन्दिर की रक्षा हेतु जान गँवाने वाले सगर चक्रवर्ती के जह्नु आदि ६० हजार पुत्रो के विषय मे पूज्य शीलागाचार्य महाराज और पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज आदि कथित सर्व सुदृढ शास्त्रीय प्रमाणो को छोडकर पौराणिक किंवदन्ती को प्रमाणित करते हैं, जो बात उनके मन की अस्थिरता एव पक्षपातपूर्णता का सूचन करती है।

आचार्य कैसी दुरगी नीति रीति अपनाते है कि एक ओर तो स्वीकार करते हैं कि पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज रचित "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" ग्रन्थ प्रामाणिक है और दूसरी ओर इस ग्रन्थ मे जिनमन्दिर, जिन प्रतिमा की बात आयी वहाँ इन्कार पूर्वक लिख देते हैं कि ऐसी कोई बात मूल आगम मे नही आयी है। 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र' की प्रामाणिकता के विषय मे खड १, पृ० ५६ पर वे लिखते हैं कि—

☼☼☼ यह है आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा विरचित त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र का उल्लेख जो पिछली आठ शताब्दियो से भी अधिक समय से लोकप्रिय रहा है। ☼☼☼

मीमासा—बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनको प्रमाणित करने के लिये आचार्य "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" का सहारा लेते हैं, किन्तु जिन मन्दिर और जिन प्रतिमा विषयक बात आनेपर सत्यमार्ग से विपरीत चलकर तुरन्त ही झूठ का सहारा ले लेते हैं। अष्टापदजी तीर्थ की रक्षा मे जह्नु आदि ६० हजार सगर पुत्रो ने वीरगति पायी थी ऐसा उल्लेख त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र और चउवन महापुरिस चरियम् मे होते हुए भी मंदिर के विरोध के कारण आचार्य लिख देते

हैं कि—"ऐसा कोई उल्लेख मूलागमो मे दृष्टिगोचर नही होता है।" किन्तु आचार्य की दुरगी नीति देखो कि ६० हजार पुत्रो की मौत के बाद सगर चक्रवर्ती का विरह विलाप और ससार वैराग्य आदि का वर्णन श्री शीलागाचार्य महाराज रचित "चउवन महापुरिस चरिय" नामक ग्रन्थ के सहारे ही लिखते हैं। आश्चर्य तो यह है कि यहाँ आचार्य हस्तीमलजी ने ऐसा क्यो नही लिखा कि "ऐसा कोई उल्लेख मूलागमो मे दृष्टिगोचर नही होता है।"

श्री आवश्यक सूत्र, श्री सिद्धस्तव आदि अनेक प्राचीन ग्रथो एव पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज और पूज्य शीलागाचार्य महाराज जैसे सत्यव्रती प्राचीन ग्रन्थकारो ने लिखा है कि अष्टापद पर्वत स्थित जिन-मदिरो की रक्षा हेतु खाई खोदने और उसमे गगा का पानी प्रवाहित करने पर नाग देवता के कोप मे जह्नु आदि ६० हजार सगरपुत्रो ने जान गँवायी थी। पूर्वाचार्यों के इस सत्य कथन को असत्य कहकर आचार्य हस्तीमलजी ने किंवदन्ती स्वरूप पौराणिक गपोडे का पक्ष करके जिन मन्दिर एव जिनप्रतिमा विषयक अपनी द्वेष परायणता का परिचय खड १, पृ० १६५ पर दिया है। यथा—

❋❋❋ सभव है, पुराणो मे शताश्वमेधी की कामना करने वाले महाराज सगर के यज्ञाश्व को इन्द्र द्वारा पाताल लोक मे कपिलमुनि के पास बाधने और सगरपुत्रों के वहा पहुचकर कोलाहल करने से कपिलऋषि द्वारा भस्मसात् करने की घटना से प्रभावित हो जैनाचार्यों ने ऐसी कथा प्रस्तुत की हो। ❋❋❋

मीमासा—ऐसा अनर्थ करने वाले आचार्य के ऐतिहासिक ज्ञान पर हमे तरस आता है। दृष्टिराग एव जिनमन्दिर विषयक द्वेष के कारण ही इस अप्रमाणिक पौराणिक गपोडे को आचार्य ने आगे

किया है। फिर खड १ (पुरानी आवृत्ति) अपनी बात पृ० २६ पर लिखना कि—"साम्प्रदायिक अभिनिवेशवश कोई भी अप्रमाणिक बात नही आवे इस बात का ध्यान रखा गया है" यह नितात गलत एव भ्रान्तिपूर्ण ही साबित होता है। क्योकि पूर्वाचार्यो के कथन को झूठा करके अन्य के असत्य कथन को आगे करना क्या अप्रमाणिकता नही है ? "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" और 'चउवन महापुरिस चरिया" इन दो महान ग्रथो मे लिखित युक्तियुक्त प्रामाणिक बात न मानके और "सभव है" ऐसा लिखकर पुराणो की किवदन्ती को मान करके आचार्य ने विश्वासघात किया है।

पूर्वाचार्यों के ग्रन्थो के सहारे इतिहास लिखना और जिन-मन्दिर एव जिन प्रतिमा की बात आये वहाँ कृतघ्नतापूर्वक यह कह देना कि—"पूर्वाचार्यों ने पुराणो की कथा से प्रभावित होकर ऐसी कहानी प्रस्तुत करदी है, जो नितात गलत है।" फिर तो बहुत सी बाते पुराणो की कथा से प्रभावित होकर प्राचीन जैनाचार्यों ने कही है, ऐसी मूर्खता-पूर्ण बात कहने की एव मानने की आपत्ति भी आसकती है।

कल्पना की उडान मे भटकते हुए आचार्य अपनी धुन मे यह भी तुलना करना भूल गये हैं कि वह पुराण की उक्ति प्राचीन है या अपने आचार्यों की उक्ति प्राचीन है ? अगर यह तुलना की जाती तो वे ऐसा लिखने का महान् साहस नही कर पाते।

> जैन पूर्वाचार्यों के कथनो को झूठा कहने वाले यह क्यो भूल जाते हैं कि फिर उनके कथन पर कौन विश्वास करेगा ?
>
> —न्याय विशारद पूज्य आचार्य श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज

☸

[प्रकरण-८]

पूर्वाचार्यों का आभार

पूज्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण, नवागी टीकाकार श्री अभयदेव सूरि महाराज, वादिवेताल श्री शातसूरि महाराज, श्री मलयगिरि महाराज, श्री शीलागाचार्यजी, पूज्य श्री हरिभद्रसूरिजी, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज, पूज्य श्री मल्लधारी हेमचन्द्राचार्य महाराज आदि अनेकानेक प्रात स्मरणीय सुगृहीतनामधेय पूर्वाचार्यों ने आगम एव आगमेतर प्राचीन: जैन साहित्य को जीवत रखकर महान उपकार किया है जिसका बदला हम चुका नही सकते हैं।

इन महान पूर्व पुरुषो ने ही जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर द्वारा तथा आगमशास्त्रो पर सरल अर्थपूर्ण वृत्ति, चूर्णि, भाष्य एव टीकादि रचकर जैन सस्कृति को आज तक जीवत रखा है। यद्यपि आचार्य हस्तीमलजी एव उनका स्थानकपथी समुदाय जिनप्रतिमा तथा जिनमदिर और वृत्ति, चूर्णि, भाष्य एव टीकादि पर अविश्वास एव अनादर करते हैं, किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि इन वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि के सहारे विना वे लोग आगमग्रन्थो का हिन्दी या गुजराती आदि भाषा मे सही सही अनुवाद भी नही करपाते हैं। फिर भी इन पूर्वाचार्यों की बुराई करने मे स्थानकपथी बाज नही आते हैं। स्थानकपथी अमोलक ऋषि "शास्त्रोद्धार मीमासा" पृ० ५३ पर लिखते हैं कि—

☼☼☼ श्री जैनधर्म प्रचारार्थ श्री महावीरस्वामीजी के निर्वाण के १२४२ वर्ष मे शैलागाचार्य ने आचाराग और सूयगडाग की टीका बनाई, १५९० वर्ष पीछे अभयदेवसूरि ने स्थानाग से विपाक पर्यन्त ९ अग की टीका बनाई, इसके बाद मलयगिरि आचार्य ने राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, पन्नवणा चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, व्यवहार और नदीजी इन ७ सूत्रो की टीका बनाई, चन्द्र-सूरिजी ने निरयावली का पचक की टीका बनाई, ऐसे ही अभयदेव सूरि के शिष्य मल्लधारी हेमचन्द्राचार्य ने अनुयोग द्वार की टीका बनाई, क्षेमकीर्तिजी ने बृहत्कल्प की टीका की, शातिसूरिजी ने श्री उत्तराध्ययनजी की वृत्ति-टीका-चूर्णिका-निर्युक्ति वगैरह सहित सविस्तार बनाया इन टीकाकारो ने अनेक स्थान मूलसूत्र की अपेक्षा रहीत व वर्तमान मे स्वत की प्रवृत्ति को पुष्ट करने जैसे मन कल्पित अर्थ भर दिये। ☼☼☼

मीमासा—स्थानकमार्गी अमोलक ऋषि मे इन टीकाकार महापुरुषो की अपेक्षा ज्ञान का अश मात्र भी होना असम्भव है, फिर भी इस महाशय ने पूर्वाचार्यों को झूठा करने मे कोई कोरकसर नही छोडी है यह अत्यन्त खेद की बात है। यद्यपि अमोलकऋषि द्वारा उनके माने हुए ३२ आगमो का हिन्दी भाषा मे अनुवाद इन पूर्वाचार्यों की टीकादि के सहारे ही किया गया है, ऐसा स्वीकार उसने अपने "शास्त्रोद्धार मीमासा" नामक पुस्तक मे किया है और जिनप्रतिमा एव जिनमदिर पर विरोध के कारण सूत्रो के अथ को तो अमोलकऋषि ने ही पलटा है, फिर भी उल्टा चोर कोतवाल को डाटे वाली बात सिद्ध करते हैं। उत्सूत्र भाषण को वज्रपाप समझने वाले भवभीरु महोपकारी पूर्वाचार्यों को "मन कल्पित अर्थ करने वाले" कहना महाकृतघ्नता के सिवाय और क्या है? "ज्ञानलव दुर्विदग्ध ब्रह्मापि नर न रजयति" इस सूक्ति को अमोलकऋषि चरितार्थ कर गये हैं। किन्तु पूर्वाचार्यों को झूठा करने मे साध्वाभास अमोलकजी यह बात सर्वथा भूल ही गये हैं कि फिर उनके कथन को सत्य कौन मानेगा?

स्थानकपथी आचार्य, साधु आदि छलकपट द्वारा सूत्रों एव अर्थों मे परिवर्तन करते है, इसका नूतन उदाहरण यह है कि स्थानकपथी अखिलेश मुनि द्वारा सकलित, सम्मति ज्ञानपीठ आगरा द्वारा मुद्रित "मगलवाणी" नामक किताब के नवस्मरण मे से "बडी शाति" नामक नौवें स्मरण [पृ० २९७-सस्करण ग्यारहवां] को मनमानी करके सक्षिप्त कर दिया गया है। "बृहत् शाति" स्तोत्र मे से मूर्तिपूजा समर्थक पाठो को आगे-पीछे से निकाल देना एक प्रकार की तस्करवृत्ति ही है। फिर ये लोग एक दिन साहूकार भी बन सकते हैं कि श्वेताम्बरो ने बृहत् शाति स्तोत्र मे कुछ पाठ ' प्रक्षेप कर दिया है।" स्थानक पथियो की इस प्रकार की कुप्रवृत्तियो पर श्वेताम्बर जन समाज को गभीरता से विचार करना चाहिए।

आचार्य हस्तीमलजी पूर्वाचार्यों के नाम देकर उनके प्रति कृतज्ञभाव पूर्वक खड-१ (पुरानी आवृत्ति) पृ० ९ पर अपनी बात मे लिखते हैं कि—

❖ ❖ ❖ उपरोक्त पर्यालोचन के बाद यह कहना किंचित्मात्र भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि हमारा जैन इतिहास बहुत गहरी सुदृढ नींव पर खडा है। यह इधर उधर की किंवदन्ती या कल्पना के आधार से नहीं पर प्रामाणिक पूर्वाचार्यों की अविरल परम्परा से प्राप्त है। अत इसकी विश्वसनीयता मे लेशमात्र भी शका की गुजाइश नहीं रहती।

मीमासा—किन्तु उक्त बात लिखना कपटपूर्ण एव भोले जनो को भ्रम मे डालने हेतु ही है। क्योकि वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि शास्त्रो मे आचार्य हस्तीमलजी स्वय विश्वास नही करते हैं। साथ ही साथ पूर्वाचार्यों के कथन को अप्रमाणिक कहकर पौराणिक किंवदन्ती स्वरूप कल्पना के समर्थक भी यही आचार्य हैं।

सगर चक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रो ने अष्टापदजी तीर्थ की रक्षा हेतु जान गंवायी थी ऐसा पूर्वाचार्यों का आगमानुसारी कथन होते हुए भी आचार्य खड–१, पृ० १६५ पर पौराणिक किंवदन्ती लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ सभव है, पुराणो मे शताश्वमेधी की कामना करनेवाले महाराज सगर के यज्ञाश्व को इन्द्र द्वारा पाताल लोक मे कपिलमुनि के पाश बाघने और सगरपुत्रो के वहाँ कोलाहल करने से कपिलऋषि द्वारा भस्मसात् करने की घटना से प्रभावित हो जैनाचार्यों ने ऐसी कथा प्रस्तुत की हो। ❋ ❋ ❋

मीमासा—देखिये, आचार्य हस्तीमलजी जिस डाल पर बैठे हैं उसीके ऊपर कुठाराघात कर रहे हैं। सुनी-सुनाई कल्पित बात लिखने के पीछे आचार्य का जैन तीर्थों के प्रति बहुत बडा पक्षपात ही सिद्ध होता है। उक्त बात से यह स्पष्ट होता है कि आगमेतर प्राचीन साहित्य के रचयिता पूर्वाचार्यों पर आचार्य हस्तीमलजी को अविश्वास है। लेकिन दूसरी ओर वे "इन पूर्वाचार्यों ने प्रवचन को सुरक्षित रखा" ऐसी आत्मवचक प्रशसा भी करते हैं। किन्तु ये पूर्वापर विरोधी बातें उनके अस्थिर चित्त की परिचायक मात्र हैं। खड–२ पृ० १३ "अपनी बात" मे आचार्य लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ प्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग के विलुप्त हो जाने के बाद जैन इतिहास को सुरक्षित रखने का श्रेय एक मात्र पूर्वाचार्यों की श्रुत-सेवा को है। इस विषय मे उन्होने जो योगदान दिया है, वह कभी भुलाया नहीं जा सकता। आगमाश्रित निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि ग्रन्थो के माध्यम से उन्होंने जो उपकार किया है, वह आज के इतिहास गवेषको के लिये बडा ही सहायक सिद्ध हो रहा है। ❋ ❋ ❋

मीमासा—इतिहास गवेषको के लिये पूर्वाचार्यों द्वारा रचित आगमाश्रित नियुंक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीका आदि शास्त्र सहायक सिद्ध हो रहे हैं, इस सहायता से सत्य की गवेषणा करके आचार्य सत्य-तथ्य आत्मसात् करे, तभी उनकी कथनी और करनी एक हो सकती है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि आचार्य ने स्वमान्यता पोषक एव जिनमन्दिर विरोधक इतिहास एक नामधारी समिति द्वारा बनवाया है, किन्तु पूर्वाचार्यों के कथन एव ऐतिहासिक तथ्यो पर नही। ऐसी दशा मे जैनागम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि शास्त्र एव मदिर, मूर्तिया आदि पुरातन अवशेषो को वे इन्द्रजाल ही सिद्ध कर रहे हैं। इस पर भी इन सबको सहायक लिखना आत्मवचना मात्र प्रतीत होता है।

जब तक आचार्य हस्तीमलजी जैन इतिहास के मूलस्तम्भ जैनागम, पूर्वाचार्यों द्वारा रचित आगमेतर,जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य एव टीकादि शास्त्रो का सत्य आधार एव मदिर और जिनप्रतिमा के विषय मे ऐतिहासिक प्राचीन अवशेषो का तथ्य होते हुए भी मूर्तिपूजा जैसे वास्तविक सत्य विषय को विवादास्पद बनायेंगे या उनके विषय मे हठधर्मिता रखेगे तब तक वे इतिहास लिखने पर भी अधेरे मे ही हैं और रहेगे।

जैनागम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि शास्त्र जिसके दिल मे हैं, वास्तव मे उसके दिल मे साक्षात् वीतराग ही बैठे हैं।

—१४४४ ग्रन्थकर्ता पूज्य हरिभद्रसूरिजी महाराज

[प्रकरण–६]

ा ँ ार ौर ि ि ा

पूर्वभव मे चारित्र की आराधना शबल (सदोष) रूप से करने पर अनार्य देश मे जन्मे हुए राजपुत्र आर्द्रकुमार ने मगध सम्राट श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के गुणगान सुनकर उनको उपहार भेजा और उनसे मैत्री चाही। भव्य जीव जानकर बुद्धिनिधान अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को धर्म प्रेमी बनाने हेतु प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान की रत्न की प्रतिमा भेंट भेजी और आर्द्रकुमार को कहलाया कि इस उपहार को एकान्त मे खोलना।

परम वीतराग श्री ऋषभदेव भगवान की मूर्ति-प्रतिमा को ध्यान से देखते देखते आर्द्रकुमार को पूर्वजन्म का स्मृति ज्ञान हो गया और जिनप्रतिमा के दर्शन से उन्हे समकित लाभ हुआ। पूर्वजन्म का साधुपन याद आने के कारण तथा साधु बनने की तीव्र भावना से उसने अनार्य देश से भागकर मगधदेश मे आकर चारित्र ग्रहण किया।

जिन प्रतिमा देखकर आर्द्रकुमार को पूर्वजन्म का जातिस्मरण ज्ञान एव बोधि लाभ हुआ था, इस विषय मे श्री सूयंगडाग सूत्र, दूसरा श्रुतस्कन्ध, छट्ठा अध्ययन मे कहा है कि—

✲✲✲ पीतीय दोण्ह दूओ, पुच्छणमभयस्स पत्थवेसो उ।
तेणावि सम्मदिट्ठित्ति, होज्ज पडिमारहमिगया॥
दट्ठु सम्बुद्धो रक्खिओ य। ✲✲

व्याख्या—[यदुक्त श्री सूत्रकृताङ्गे द्वितीय श्रुतस्कन्धे षष्ठाध्ययने]

अन्यदार्द्रकपित्रा जनहस्तेन राजगृहे श्रेणिकराज्ञ प्राभृत प्रेषितम् । आर्द्रककुमारेण श्रेणिकसुतायाभयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्राभृत तस्यैव हस्तेन प्रेषितम् । जनो राजगृहे गत्वा श्रेणिकराज्ञ प्राभृतानि निवेदितवान् सम्मानितश्च राज्ञा आर्द्रक प्रहितानि प्राभृतानि चाभयकुमाराय दत्तवान्, कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि । अभयेनाचिंति नूनमसौ भव्य स्यादासन्नसिद्धिको, यो मया सार्द्ध प्रीतिमिच्छतीति । ततोऽभयेन प्रथमजिनप्रतिमा बहुप्राभृतयुताऽऽर्द्रककुमाराय प्रहिता, इद प्राभृतमेकान्ते निरूपणीयमित्युक्त जनस्य । सोप्यार्द्रकपुर गत्वा यथोक्त कथयित्वा प्राभृतमार्पयत् । प्रतिमा निरूपयत कुमारस्य जातिस्मरणमुत्पन्न, धर्मे प्रतिबद्ध मन अभय स्मरन् वैराग्यात्कामभोगेष्वनासक्तस्तिष्ठति । पित्राज्ञातं माक्वचिदसौ यायादिति पचशत सुभटैर्नित्य रक्ष्यते इत्यादि ।

अर्थात्—एक दिन आर्द्रकुमार के पिता ने दूत के साथ राजगृह नगरी मे श्रेणिक राजा को उपहार भेजा । आर्द्रकुमार ने श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार के साथ मैत्री करने हेतु उसी दूत के हाथ उपहार भेजा । दूतने राजगृह मे जाकर श्रेणिक राजा को उपहार दिये । श्रेणिक राजा ने भी दूत का यथायोग्य सन्मान किया और आर्द्रकुमार द्वारा भेजे गये उपहार को अभयकुमार को दिया तथा स्नेह-वचन कहे । अभयकुमार ने सोचा कि निश्चय यह भव्य है और निकट मोक्षगामी है, जो मेरे साथ प्रीति चाहता है । तब अभयकुमार ने बहुत प्राभृत सहित प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा-मूर्ति आर्द्रकुमार को भेंट भेजी और दूत को सदेश दिया कि यह भेंट आर्द्रकुमार को एकान्त मे दिखाना । दूतने भी आर्द्रकपुर मे जाकर यथोक्त सदेश कहकर भेंट दे दी । जिनप्रतिमा को देखते देखते आर्द्रकुमार को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया एव उसका मन धर्म मे प्रतिबोधित हुआ । अभयकुमार को याद करता हुआ, वैराग्य से काम-भोगो मे आसक्त नही होता हुआ आर्द्रकुमार वहाँ रहा है । आर्द्रकुमार के पिता

ने पुत्र आर्द्र को वैरागी जानकर, यह कही चला नही जाए इस वास्ते ५०० सुभटो के वीच मे उसको रखा, इत्यादि ।

श्री सूयगडाग सूत्र मे यह भी उल्लेख किया है कि जब तक आर्द्रकुमार ने चारित्र-दीक्षा ग्रहण नही की तब तक वह अभयकुमार से प्राप्त जिन प्रतिमा की प्रतिदिन पूजा करता रहा था ।

आर्द्रकुमार के उक्त कथानक के विषय मे जिनप्रतिमा की बात आने के कारण तथ्य को तोड-मरोड कर आचार्य हस्तीमलजी "अपनी बात" खण्ड १, पृ० ३० पर लिखते हैं कि—

❋❋❋ अभयकुमार ने अनार्य देशस्थ अपने पिता के मित्र अनार्य नरेश के राजकुमार (आर्द्र) को धर्म प्रेमी बनाने के लिये "धर्मोपगरण (?)" की भेंट भेजी । ❋❋❋

मीमासा—उक्त कथन आचार्य ने कौन से प्राचीन शास्त्र के आधार पर किया है यह उन्हें प्रामाणिकता पूर्वक कहना चाहिये । श्री सूयगडाग सूत्र, भरतेश्वरवृत्ति, श्री आर्द्रकुमार चरित्र आदि प्राचीन ग्रथो में अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को (श्री ऋषभदेव भगवान की) जिनप्रतिमा भेजी ऐसा स्पष्ट कथन होते हुए भी जिनप्रतिमा विषयक स्वमतविरोध के कारण आचार्य ने सुनी-सुनाई स्वमति कल्पित बात लिख दी है, जिसमे सत्य का सर्वथा अभाव ही है ।

यद्यपि कतिपय स्थानकपथी लेखक अपनी पुस्तको मे ऐसा लिखते हैं कि अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को "मुँहपत्ती का टुकडा" भेजा था । कोई "ओघा (रजोहरण)" भेजने का भी लिखते हैं, जो शास्त्र निरपेक्ष होने के कारण नितात असत्य है ।

जैन धर्म के विषय मे स्वोत्प्रेक्षित तर्क एव कल्पना शक्ति के आधार पर इतिहास लिखने वाले आचार्य हस्तीमलजी ने यहाँ

"धर्मोपगरण" ऐसा लिखकर सारा मामला गोलमोल ही रखा है। यानी अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को "धर्मोपगरण" के रूप मे क्या जिनप्रतिमा भेजी थी ? क्या मुंहपत्ती का टुकडा भेजा था ? क्या सामायिक करने का आसन भेजा था ? क्या ओघा (रजोहरण) भेजा था ? क्या पूंजनी भेजी थी ? प्रश्न तो यह होता है कि आचार्य माने जाने वाले हस्तीमलजी "जिन प्रतिमा" के विषय मे झूठ का सहारा लेकर बेईमानी क्यो कर रहे हैं ?

टीका चूर्णि भाष्य उवेख्या, उवेखी निर्युक्ति ।
प्रतिमा द्वेषे सूत्र उवेख्या, दूर रही तुझ मुक्ति ।।
—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्यायजी

[प्रकरण–१०]

रा   ौर कृष   ी

वासुदेव कृष्ण और प्रतिवासुदेव जरासध के बीच युद्ध हुआ। जरासध ने जरा नाम की विद्या से कृष्ण के सैनिको को हतप्रभ कर दिया। जरा की बीमारी के कारण यादव सैन्य को लड़ाई लडने मे असमर्थ देखकर, जरा निवारण हेतु वनमाली ने अट्ठम (तीन उपवास) तप किया। तप के प्रभाव से तुष्ट होकर घरणेन्द्र की अग्रमहिषी पद्मावती देवी ने महिमावन्ती श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा दी। जिसके अभिषेक जल छिडकने से सब ही सैनिको की मूर्छा दूर हुई। उस समय नेमिनाथजी ने विजय सूचक शखनाद किया। शखपूरने के कारण वहा शखेश्वर नाम का गाँव बसाया, इस शखेश्वर गाँव मे पार्श्वनाथजी की प्रतिमा विराजमान की गयी और तब से पार्श्वनाथजी का एक नाम "शखेश्वर पार्श्वनाथ" पडा। आज भी गुजरात के मेहसाणा जिले मे 'शखेश्वरजी तीर्थ" मौजूद है। श्री कल्पसूत्र की टीका मे भी इसका उल्लेख है।

उक्त विषय मे श्री शुभवीर विजय महाराज साहब का बनाया स्तवन जैन समाज मे अत्यन्त प्रसिद्ध है। यथा—

शखपुरी सबको जगावे, शखेश्वर गाम बसावे।
मदिर मे प्रभु पधरावे, शखेश्वर नाम धरावे रे॥

सम्मति ज्ञानपीठ, आगरा से प्रकाशित "मगलवाणी" नामक पुस्तक, जिसका सकलन स्थानक मार्गी अखिलेश मुनि ने किया है। जिसके पृ० २७१ (ग्यारहवाँ सस्करण) पर पार्श्वनाथ भगवान का स्तोत्र दिया है। जिसमे श्री पार्श्वनाथजी का एक विशेषण 'श्री शखेश्वर मडन पार्श्वजिन" लिखा है।

अर्थात्—शखेश्वर गाँव के सिरताज श्री पार्श्वनाथ भगवान। इससे भी शखेश्वर पार्श्वनाथ नाम के तीर्थ की पुष्टि होती है।

शखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा के विषय मे श्री पार्श्वनाथ चरित्र और हरिवश चरित्र मे इस प्रकार का उल्लेख आता है कि—

गत चौबीसी के दामोदर नाम के तीर्थंकर भगवान को आषाढी नाम के श्रावक ने पूछा कि—हे भगवन्! ससार से मेरा निस्तार कब होगा? तब दामोदर भगवान ने उसको बताया कि आगामी चौबीसी के तेवीसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान के तुम गणधर बनोगे तब तुम्हारा मोक्ष होगा। ऐसा सुनकर प्रभु पार्श्वनाथ की प्रतिमा उसने बनवायी थी। श्री शुभवीर विजयजी महाराज कृत "शखेश्वर पार्श्वनाथ स्तवन" मे भी उक्त बात का जिक्र आता है। यथा—

सवेगे तजी घर वासो, प्रभु पार्श्व के गणधर थाशो।
तब मुक्तिपुरी मे जाशो, गुणीलोक मे वयणे गवाशो रे ।।
शखेश्वर साहिब साचो।
इम दामोदर जिन वाणी, आषाढी श्रावके जाणी।
जिन वदी निज घर आवे, प्रभु पार्श्वकी प्रतिमा भरावे रे ।।
शखेश्वर साहिब साचो।

खड–१, पृ० ३५२ से ३६२ तक मे जरासध और कृष्ण की लडाई का लबा चौडा वर्णन त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र, चउवन महापुरिष चरिय, वसुदेव हिन्डी आदि आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य से करने वाले आचार्य हस्तीमलजी ने "श्री नेमिनाथ ने शख ध्वनि की" इस बात का जिक्र किया है, किन्तु पद्मावती देवी प्रदत्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा के अभिषेक जल से यादव सैन्य की जरा की बीमारी नष्ट हुई आदि बहुत से तथ्यो पर पर्दा डाल दिया है, यह कितना आश्चर्य है ! इतिहास लिखने बैठे हैं और ऐतिहासिक तथ्य को छिपा रहे हैं, ऐसे इतिहास को कौन सत्य मानेगा ?

विषम काले जिनबिंब
जिनागम भविजन को आधारा।

[प्रकरण–११]

गी में ग्री ि ।गी । तू

श्रेणिक महाराजा के पुत्र कूणिक ने विशाला नगरी पर चढाई की। उसी नगरी मे बीसवे तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी की पादुका स्थापित थी, जिससे नगरी पर कूणिक विजय नही पा सके थे। इसका वर्णन श्री नन्दीसूत्र मे पृ० ९१ पर है। यथा—

❂ ❂ ❂ विशालाया पुर्यां कूलवालकेन विशाला भङ्गाय यन्मुनि॰ सुव्रत पादुका स्तूपोत्खात् सा तस्य पारिणामिकी बुद्धि'। ❂ ❂ ❂

भावार्थ—विशाला नगरी का नाश करने के लिये श्री मुनिसुव्रत स्वामी के पादुका सहित स्तूप को उखाड़ने से नगरी का भग हो सकेगा। ऐसा कथन कूलवालक मुनि ने किया यह पारिणामिक बुद्धि से।

वैशाली के विनाश के विषय मे आचार्य हस्तीमलजी ने खड-१, पृ० ७४६ से ७५४ तक लम्बा वर्णन किया है, किन्तु इस स्तूप के विषय मे ऐतिहासिक विवरण नही दिया है। वैशाली के विनाश का सक्षिप्त इतिहास इसप्रकार है।

राजा श्रेणिक के पुत्र कूणिक और वैशाली के राजा चेटक के बीच भयकर युद्ध हुआ। कूणिक का बहुत दिनो तक वैशाली पर घेरा पडा रहा। लाखो सैनिको के सहार होने पर भी कूणिक से वैशाली

नगरी जीती नही जा सकी । दैवी शक्ति द्वारा कूणिक को ज्ञात हुआ कि वैशाली नगरी मे श्री मुनिसुव्रतस्वामी का प्राचीन स्तूप है, जिसके प्रभाव से वैशाली अविजित रही है। अविजित वैशाली नगरी पर विजय पाने के लिये भगवान के स्तूप को तोडना आवश्यक था। अतः कूलवालक नाम के मुनि को मागधिका नाम की वेश्या द्वारा चरित्र-भ्रष्ट करवाकर नैमित्तिक के रूप मे गुप्त रीति से वैशाली मे प्रवेश करवाया गया। वर्षों के युद्ध से परेशान जनता ने नैमित्तिक कूलवालक को युद्ध मुक्ति का उपाय पूछा। कूलवालक ने श्री मुनिसुव्रत स्वामी का स्तूप तोड देने पर युद्ध समाप्ति बतायी। काफी प्रचार के बाद लोगो ने कूलवालक की बात पर विश्वास कर स्तूप को तोड दिया। पूर्व सकेत के अनुसार कूणिक ने पहिले सैनिको को वैशाली से दूर हटा लिया, किन्तु बाद मे वैशाली पर आक्रमण करके इसको जीत लिया। खण्ड १, पृ० ७५३ पर आचार्य लिखते हैं कि—

ॐ ॐ ॐ दुश्मन के घेरे से ऊबे हुए नागरिको ने कूलवालक को नैमित्तिक समझकर बडी उत्सुकता से पूछा—विद्वन्! शत्रु का यह घेरा कब तक हटेगा ?

कूलवालक ने उपयुक्त अवसर देखकर कहा—"यह स्तूप बडे अशुभ मुहूर्त मे बना है। इसी के कारण नगर के चारों ओर घेरा पडा हुआ है। यदि इसे तोड दिया जाय तो शत्रु का घेरा हट जायगा।

कुछ लोगो ने स्तूप को तोडना प्रारम्भ किया। कूलवालक ने कूणिक को सकेत से सूचित किया। कूणिक ने अपने सैनिको को घेरा समाप्ति का आदेश दिया। स्तूप के ईषत् भग का तत्काल चमत्कार देखकर नागरिक बडी सख्या मे स्तूप का नामोनिशा तक मिटा देने के लिये टूट पडे। कुछ ही क्षणो मे स्तूप का चिन्ह तक नहीं रहा।

फूलवालक से इष्टसिद्धि का सकेत पाकर कूणिक ने वैशाली पर प्रबल आक्रमण किया। उसे इस बार वैशाली का प्राकार भग करने मे सफलता प्राप्त हो गई। ☸ ☸ ☸

मीमासा—इन सब बातो से इस तथ्य की ठोस पुष्टि होती है कि उस समय मे भी यानी आज से करीब २५०० वर्ष पहिले भी वैशाली नगरी मे श्री मुनिसुव्रत स्वामी का प्रभावशाली स्तूप था अर्थात् जिन मदिर था, जिसके कारण ही वैशाली अविजित रही थी।

जिनस्तूप के ऐसे अवर्णनीय प्रभाव को एव जिनमन्दिर विषयक तथ्य का स्थानकपथी आचार्य ने यहा प्रसग प्राप्त विशद वर्णन नही किया है जो अनुचित है। आचार्य ने अपने इतिहास मे यह भी नही लिखा है कि यह स्तूप कब बना था ? श्री महावीर स्वामी के समय मे भी इसकी महिमा थी, आदि तथ्यो को भी आचार्य ने छिपाया है। फिर भी आज से २५०० साल पहिले भी वैशाली मे जिनस्तूप यानी जिनमन्दिर था, इससे मूर्तिपूजा विषयक ठोस तथ्य को इतिहासकार आचार्य क्या स्वीकार करेगे ? क्या आचार्य सत्य को सत्य रूप मे पसद करेगे ?

☸

सूत्रमपास्य जडा भाषन्ते, केचन मतमुत्सूत्रम् रे।
किं कुर्मस्ते परिहृत पयसो, यदि पियन्ते मूत्रम् रे॥

अर्थात्—सूत्र नीति को छोडकर मूर्ख-जड उत्सूत्र बोलता है। जो स्वाविष्ट दूध को छोडकर पिशाब पीता है, उनके लिये हम क्या कर सकते हैं ?

—पू० विनय विजयजी उपाध्याय

[प्रकरण-१२]

[illegible]

जिसप्रकार श्री मुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप के कारण वैशाली नगरी का विनाश सभव न हो सका था, ठीक उसीप्रकार यज्ञस्तम्भ (यूप) के नीचे रही भगवान श्री शातिनाथजी की प्रभावशाली प्रतिमा के कारण शय्यभव ब्राह्मण का यज्ञादि फलफूल रहा था और बाद मे वे प्रतिमा दर्शन के कारण ही जैनदीक्षा मे प्रतिबुद्ध हुए थे।

श्री महावीर स्वामी की पाट परम्परा मे श्री सुधर्मा स्वामी के बाद चौथे श्री शय्यभव सूरिजी आये। आपने श्री दशवैकालिक सूत्र की रचना की थी। आर्य श्री शय्यभव सूरि के विषय मे श्री दशवैकालिक निर्युक्ति शास्त्र तथा त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र इतिहास कथित कथानक इस प्रकार है।

आर्य श्री प्रभवस्वामी को अपने समुदाय मे चतुर्विध श्री सघ सचालक तेजस्वी साधु नही मिला। राजगृह नगर निवासी, यज्ञानुष्ठान निरत शय्यभव ब्राह्मण को ज्ञानवल से सुयोग्य जानकर आप राजगृही मे पधारे और दो साधुओ को सकेत पूर्वक शय्यभव के यज्ञमडप पर गोचरी के लिये भेजा। शय्यभव ब्राह्मण ने यज्ञमडप (स्थल) अपवित्र होने के डर से उनको रोका। तब साधु बोले कि—"तुम तत्त्व नही जानते"। शय्यभव ने यज्ञगोर-पुरोहित को तत्त्व पूछा। प्रधान पुरोहित ने यज्ञयाग और वेद को ही तत्त्व बताया। इस पर भी शय्यभव की जिज्ञासा शात न हुई और क्रुद्ध

होकर उसने तलवार निकाली, तब जान खतरे मे जानकर पुरोहित ने बताया कि—"सुख चैन से यज्ञ हो रहा है और तुम फूल फल रहे हो, इसका कारण यज्ञ स्तम्भ के नीचे रही श्री शातिनाथ भगवान की प्रभावशाली प्रतिमा है।" शय्यभव ने यूप (यज्ञ स्तम्भ) को तत्काल उखाडकर प्रशातमुद्रायुक्त श्री शातिनाथ भगवान की प्रतिमा निकाली।

बाद मे आर्य श्री प्रभवस्वामी के पास जाकर बाह्यात्मा, अतरात्मा और परमात्मा का तत्त्व पाकर अपनी सगर्भा स्त्री को छोडकर उसने चारित्र लिया।

उक्त यथार्थ कथानक के तथ्यो को तोड-मरोड कर खड २, पृ० ३१४ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ उपाध्याय ने काल के समान करवाल लिये अपने (ब्राह्मण) को सम्मुख देखकर सोचा कि अब सच्ची बात बताये बिना प्राणरक्षा असभव है। यह विचार कर उसने कहा—"अर्हत् भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म ही वास्तविक तत्त्व और सही धर्म है (!?)" इसका सही उपदेश यहाँ विराजित आचार्य प्रभव से तुम्हे प्राप्त करना चाहिए। ✲ ✲ ✲

मीमासा—श्री दशवैकालिक सूत्र के कर्ता श्री शय्यभवसूरि श्री शातिनाथजी की प्रतिमा को देखकर प्रतिबोधित हुए थे, ऐसा श्री दशवैकालिक निर्युक्ति शास्त्र मे भी लिखा है, यथा—

✲ ✲ "सिज्जंभव गणहर जिणपडिमा दसरोण पडिबुद्ध ॥ श्लोक-१४ ॥ ✲ ✲ ✲

यज्ञगोर ने शय्यभव ब्राह्मण को यज्ञस्तम्भ के नीचे रही श्री शातिनाथ भगवान की प्रतिमा को तत्त्व बताया था, ऐसा दशवैकालिक

नियुं क्ति आगम एव पूज्य हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित प्राचीन इतिहास के परिशिष्ट पर्व मे भी प्रतिमा का सत्य बताया गया है, फिर भी प्रतिमा विषयक सत्य को छिपाना आचार्य का अनुचित कार्य ही है। इतिहास लेखन मे स्थानकपथी आचार्य को यदि प्रतिमा विरोधी मान्यता का ही समर्थन एव निरूपण करना था, तो इतिहास लिखने की आवश्यकता ही क्या थी ? और उन्होने अपने स्थानकपथी इतिहास का नाम "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" ऐसा रखकर असत्य का सहारा क्यो लिया ?

पडिक्कमणे मुनिदान विहारे, हिंसा दोष विशेष।
लाभालाभ विचारी जोता, प्रतिमा मा शो द्वेष ?
—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्यायजी

सारथी के वचन पर ही जन्म से पापकार्यों से पराङ्मुख श्री नेमिनाथ भगवान को सहारक लीला के साथ जोडने का साहस कर सके हैं। आचार्य यहाँ यह क्यो भूल जाते हैं कि तीर्थंकर परमात्मा का चारित्र तद्भव मे सर्वथा निर्दोष ही होता है। ऐसी भ्रामक बात लिखने वालो से जैन समाज को सावधान रहना चाहिए और विशेषकर दयाधर्मी समाज को, क्योकि तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के उज्ज्वल चरित्र को कलकित करने की आचार्य हस्तीमलजी की यह गर्हणिय चेष्टा है।

यद्यपि चौबीस तीर्थंकरो मे सोलहवे शातिनाथजी, सत्रहवें कु थुनाथजी, एव अठारवें अरनाथजी षट्खड पृथ्वी के साधक चक्रवर्ती राजा हुए हैं। किन्तु इन पुण्यात्माओ को बिना शस्त्र उठाये ही षट्खड भूमि प्राप्त हो जाती है, क्योकि तीर्थंकर पुण्यलक्ष्मी उनके चरण चूमती है। ऐसा ही पुण्य प्राग्भार श्री पार्श्वकुमार का था। उनके युद्धभूमि मे जाने के साथ ही उस मातलि सारथी सहित देवोद्वारा पूजे गये पार्श्वकुमार को देखकर यवनराजा प्रभु के चरणो मे आ गया था। ऐसा ही पुण्य प्रकर्ण श्री नेमिनाथजी का था, ऐसा आचार्य को स्वीकार करना चाहिए।

जिसके हृदय मे सूत्राभ्यास द्वारा सद्बोधक प्रादुर्भाव हुआ है, उसके हृदय मे ही आगमसूत्र की तात्त्विक स्पर्शना होती है।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय

[प्रकरण–१४]

श्री पार्श्वनाथ को वैराग

एक बार पार्श्वकुमार कुमारावस्था मे बगीचे मे अपनी पत्नी प्रभावती के साथ गये। वहाँ महल की दीवार पर श्री नेमिनाथजी ने राजीमति को छोडकर किस प्रकार चारित्र लिया इनके विषय मे चित्र देखे। यह निमित्त पाकर पार्श्वकुमार चारित्र लेने के लिये उद्यत हुए।

इस विषय मे पूर्वमुनि रचित श्री पार्श्वनाथजी की स्तुति भी जैन समाज मे प्रसिद्ध है यथा—

"नेमिराजी चित्र विराजी, विलोकित व्रत लिये"।

अर्थात्—नेमिनाथजी और राजीमति को (बारात के) चित्र मे विराजमान देखकर पार्श्वकुमार ने चारित्र लिया।

श्री पार्श्वकुमार को चारित्र लेने मे चित्र निमित्त बने हैं ऐसा पूर्वाचार्य कहते हैं, फिर भी यह बात आचार्य हस्तीमलजी को अखरती है, जो सर्वथा अनुचित है। चित्र दर्शन से ज्ञान प्राप्ति के इस सत्य तथ्य को अन्य पूर्वाचार्यों के नाम लिखकर आचार्य ने स्वय को अलिप्त रखने की चेष्टा की है और इतिहासकार के नाते सत्य मे अरुचि प्रगट की है, जो उचित नही है।

श्री पार्श्वकुमार को तस्वीर से [चित्र दर्शन से] वैराग्य हुआ है, इस तथ्य को मजबूर होकर खड १, पृ० ४८६ पर आचार्य हस्तीमलजी को अन्य पूर्वाचार्यों के नाम लिखने पडे हैं कि—

☼ ☼ ☼ जैसे 'चउवन महापुरिस चरिय' के कर्ता आचार्य शीलाक, "सिरिपास नाह चरिय" के रचयिता देवभद्रसूरि और 'पार्श्वनाथ चरित्र' के लेखक भावदेव तथा हेमविजयगणि ने भित्तिचित्रो को देखने से (पार्श्वकुमार को) वैराग्य होना बताया है। ☼ ☼ ☼

मीमासा—इतने सारे प्राचीनाचार्यो का कथन होने पर तो आचार्य को तस्वीर विषयक तथ्य को अवश्य स्वीकारना ही चाहिए और इस विषय मे अपनी नाराजगी दूर करनी ही चाहिए। स्थानकपथ के आद्य प्रणेता एक वृद्ध जैन भाई लोकाशाह ने चारित्र लिया था, ऐसा कही से सिर्फ सकेत मात्र मिल जाने पर बढा चढाकर लम्बी वाक्य रचना कर देने मे कुशल आचार्य को पार्श्वकुमार के वैराग्य मे प्राचीन पूर्वाचार्यों के ग्रन्थो का सहारा मिलने पर भी सत्य को स्वीकार करने मे कौनसा सिद्धान्त बाध्य करता है ?

अपनी तस्वीर बनवाकर बँटवाने वाले, गृहस्थ की तस्वीर को अपने इतिहास मे छपवाने वाले, तीर्थंकर परमात्मा के लाछन चित्रो को मान्यता देनेवाले आचार्य जब तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर मात्र से ही नफरत करते हैं तब सखेद आश्चर्य होता है।

यद्यपि जन्म से ही तीन ज्ञानधारक तीर्थंकर परमात्मा स्वय बुद्ध होते हैं, वे किसी से बोध पाकर चारित्री नही बनते, फिर भी जैसे अरिष्टनेमिकुमार का शादी न करके चारित्र लेने मे पशुओ का करुण क्रदन निमित्त हुआ है, वैसे ही पार्श्वकुमार को नेमिनाथ और राजीमति का चित्र दर्शन चारित्र का निमित्त बना ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है, जो

सर्वथा उचित ही है । एव ज्ञानगर्भित वैराग्यवन्त होते हुए भी तीर्थंकर परमात्मा नियत समय पर ही चारित्र लेते हैं, उसी तरह स्वयबुद्ध होने पर भी अगर वे कोई बाह्य निमित्त से चारित्र ग्रहण करते हैं, तो उसमे शास्त्र सिद्धान्त सहमत है । श्री शान्तिनाथ भगवान के चरित्र मे खड १, पृ० २४० पर आचार्य स्वय लिखते हैं कि—

❋❋❋ लोकान्तिक देवो से प्रेरित होकर प्रभु ने वर्षभर याचकों को इच्छानुसार दान दिया (यावत्) सिद्ध की साक्षी से सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की । ❋❋❋

मीमासा—उक्त प्रकार ही पूर्वाचार्यों का प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसा कहना है कि श्री पार्श्वकुमार को चारित्र का निमित्त श्री नेमिनाथ तथा राजीमति के बारात के चित्र हुए थे। इस सत्य तथ्य को प्रामाणिकता पूर्वक आचार्य को स्वीकार करना चाहिए ।

पाप नही कोई उत्सूत्र भाषण जिस्यो,
धर्म नही कोई जग सूत्र सरिखो ॥

—अध्यात्ममूर्ति महान विद्वान्
श्री आनन्दघनजी महाराज

श्री पार्श्वकुमार को तस्वीर से [चित्र दर्शन से] वैराग्य हुआ है, इस तथ्य को मजबूर होकर खड १, पृ० ४८६ पर आचार्य हस्तीमलजी को अन्य पूर्वाचार्यों के नाम लिखने पडे हैं कि—

☼ ☼ ☼ जैसे 'चउवन महापुरिस चरिय' के कर्ता आचार्य शीलाक, "सिरिपास नाह चरिय" के रचयिता देवभद्रसूरि और 'पार्श्वनाथ चरित्र' के लेखक भावदेव तथा हेमविजयगणि ने भित्तिचित्रो को देखने से (पार्श्वकुमार को) वैराग्य होना बताया है। ☼ ☼ ☼

मीमासा—इतने सारे प्राचीनाचार्यो का कथन होने पर तो आचार्य को तस्वीर विषयक तथ्य को अवश्य स्वीकारना ही चाहिए और इस विषय मे अपनी नाराजगी दूर करनी ही चाहिए। स्थानकपथ के आद्य प्रणेता एक वृद्ध जैन भाई लोकाशाह ने चारित्र लिया था, ऐसा कही से सिर्फ सकेत मात्र मिल जाने पर बढा चढाकर लम्बी वाक्य रचना कर देने मे कुशल आचार्य को पार्श्वकुमार के वैराग्य मे प्राचीन पूर्वाचार्यों के ग्रन्थो का सहारा मिलने पर भी सत्य को स्वीकार करने मे कौनसा सिद्धान्त बाध्य करता है ?

अपनी तस्वीर बनवाकर बँटवाने वाले, गृहस्थ की तस्वीर को अपने इतिहास मे छपवाने वाले, तीर्थंकर परमात्मा के लाछन चित्रो को मान्यता देनेवाले आचार्य जब तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर मात्र से ही नफरत करते है तब सखेद आश्चर्य होता है।

यद्यपि जन्म से ही तीन ज्ञानधारक तीर्थंकर परमात्मा स्वय बुद्ध होते हैं, वे किसी से बोध पाकर चारित्री नही बनते, फिर भी जैसे अरिष्टनेमिकुमार का शादी न करके चारित्र लेने मे पशुओ का करुण क्रदन निमित्त हुआ है, वैसे ही पार्श्वकुमार को नेमिनाथ और राजीमति का चित्र दर्शन चारित्र का निमित्त बना ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है, जो

सर्वथा उचित ही है। एव ज्ञानगर्भित वैराग्यवन्त होते हुए भी तीर्थंकर परमात्मा नियत समय पर ही चारित्र लेते हैं, उसी तरह स्वयबुद्ध होने पर भी अगर वे कोई बाह्य निमित्त से चारित्र ग्रहण करते हैं, तो उसमे शास्त्र सिद्धान्त सहमत है। श्री शान्तिनाथ भगवान के चरित्र मे खड १, पृ० २४० पर आचार्य स्वय लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ लोकान्तिक देवो से प्रेरित होकर प्रभु ने वर्षभर याचकों को इच्छानुसार दान दिया (यावत्) सिद्ध की साक्षी से सम्पूर्ण पापो का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की। ❋ ❋ ❋

मीमासा—उक्त प्रकार ही पूर्वाचार्यों का प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसा कहना है कि श्री पार्श्वकुमार को चारित्र का निमित्त श्री नेमिनाथ तथा राजीमति के बारात के चित्र हुए थे। इस सत्य तथ्य को प्रामाणिकता पूर्वक आचार्य को स्वीकार करना चाहिए।

पाप नही कोई उत्सूत्र भाषण जिस्यो,
धर्म नही कोई जग सूत्र सरिखो ॥

—अध्यात्ममूर्ति महान विद्वान्
श्री आनन्दघनजी महाराज

[प्रकरण—१५]

ि ा से ैराग ा

कुम्भराजा की पुत्री मल्लिकुमारी का सौदर्य अलौकिक था। लोकोत्तर सौंदर्य की प्रशसा सुनकर पूर्वभव के छह मित्रो ने मल्लिकुमारी के साथ शादी करनी चाही। राजा कुम्भ डर गये कि एक राजकुमार को मल्लिकुमारी देने पर उन्हे अन्य के साथ लडाई मोल लेनी पडेगी। बाद मे मल्लिकुमारी ने अपनी प्रतिकृति-प्रतिमा बनवाकर शरीर की अशुचिता उस प्रतिमा-मूर्ति द्वारा दिखाकर उन छहो राजकुमारो को प्रतिबोधित किया था।

श्री ज्ञातासूत्र एव ठाणागसूत्र मे भी लिखा है कि मल्लि-कुमारी ने अपनी प्रतिकृति-प्रतिमा द्वारा राजकुमारो को प्रतिबोधित किया था। इस विषय मे खड १, पृ० २७८ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

❋❋❋ सूर्योदय होते ही मोहन घर के गर्भगृहो के वातायनो मे से जितशत्रु आदि उन छहो राजाओं ने भगवती मल्लि द्वारा निर्मित साक्षात् मल्लिकुमारी के समान, अनुरूप सुन्दरी, रूप-लावण्य-यौवन सम्पन्ना भगवती मल्लि की प्रतिकृति-प्रतिमा को मणिपीठ पर देखा। ❋❋❋

मीमासा—तस्वीर मे बहुत कुछ रहस्य भरा हुआ है, तभी तो स्थानकपथी सत भी अपनी तस्वीरें आज भी बडे चाव से छपवाते-बँटवाते नजर आते है। पिछले प्रकरण मे हम देख आये हैं कि श्री नेमिनाथ और राजीमति के चित्रो के दर्शन, श्री पार्श्वकुमार को चारित्र-

दीक्षा मे निमित्त हुए थे और प्रस्तुत मे भगवती मल्लिकुमारी अपनी प्रतिकृति-प्रतिमा द्वारा छहो राजाओ को प्रतिबोधित करती हैं। इन सब तथ्यो से प्रतिमा विषयक सत्य की पुष्टि होती है, जिसे प्रामाणिकता और हिम्मतपूर्वक आचार्य को स्वीकार करना चाहिए एव तस्वीर सिर्फ "परिचय" के लिये ही नही है, किन्तु ज्ञान वदनादि के लिये भी है ऐसा अनेकान्तवाद का आश्रय लेना चाहिए।

हमारे पास स्थानकमार्गी आचार्य चौथमलजी सहित ४३ मुनियो की सामूहिक तस्वीर-फोटो है, जिसके विक्रय हेतु समाचार पत्रो मे भी प्रचार करवाया गया था। यद्यपि "तस्वीर सिर्फ परिचय के लिये है" ऐसा तस्वीर के नीचे लिखकर स्थानकपथी बाहर से थोथा विरोध करते हैं, किन्तु निज की तस्वीरें चाव से छपवाने और बँटवाने वाले वे लोग अपने अन्दर झाँककर देखें तो उन्हे तस्वीर का मुख्य प्रयोजन अपने आप मालुम हो जाएगा। जड नाम के स्मरण के पीछे जो आशय सधता है, इससे अनेक गुणा आशय जड तस्वीर या प्रतिमा के दर्शन पूर्वक के नाम स्मरण से सधता है, यह उनको समझना चाहिए।

अपनी तस्वीरें बडे चाव से छपवाने-बँटवाने वाले स्थानक-पथी सतो ने क्या कभी तीर्थंकर भगवान की तस्वीर भी छपवायी-बँटवायी है? अरे! और तो क्या कहे? एकान्ते शरण्य, ज्ञानदाता श्री तीर्थंकर की तस्वीर से नफरत करनेवाले आचार्य हस्तीमलजी स्वय ने ही अपने इतिहास मे दानदाता गृहस्थ की तस्वीर छपवाई है। तीर्थंकर भगवान की तस्वीर के प्रति ही ऐसा पक्षपात और घृणा करना आचार्य का अनुचित एव कृतघ्नतापूर्ण कृत्य है।

विषम काले जिन बिम्ब जिनागम
भविजन को आधारा।

[प्रकरण–१६]

रि ं र नि ं पूः ी ौं
र ।

"जैनधर्म का मौलिक इतिहास—खड १" पर चौबीसो भगवान के परिचायक भिन्न भिन्न लाछन चित्रो की तस्वीर एव भीतर मे दानदाता गृहस्थ की तस्वीर छपाने वाले आचार्य हस्तीमलजी ने ज्ञानदाता तीर्थंकर परमात्मा की तस्वीर अपने इतिहास मे न छपवाकर अरिहत परमात्मा पर अपनी अभक्ति का परिचय दिया है। यानी आचार्य को गृहस्थ की तस्वीर से कोई पक्षपात नही है और तीर्थंकरो की लाछन तस्वीर से भी उन्हे कोई विरोध नही है, पक्षपात और विरोध है तो केवल ज्ञानदाता जिनेश्वर श्री तीर्थंकर भगवान की तस्वीर से है, जो सर्वथा अनुचित ही है। भिन्न-भिन्न तीर्थंकरो की मूर्तियो की पहचान करानेवाले लांछनो को मानना और उन मूर्तियो के प्रति आखे मूद लेना यह कौनसा रोग होगा ? ज्ञानी जाने ! किन्तु इसके मूल मे आचार्य की तीर्थंकरो के प्रति भक्ति एव बहुमान का अभाव ही प्रगट होता है।

इसी तरह आचार्य मे महा धुरंधर पूर्वाचार्यों पर भी अभक्ति एव अबहुमान प्रतीत होता है क्योकि मूर्ति और मदिर की बात आने पर आचार्य हस्तीमलजी वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि के रचयिता पूर्वाचार्यों को झूठा करने मे तनिक भी लज्जा नही करते हैं। आश्चर्य

तो इस बात का है कि पूर्वाचार्यों द्वारा रचित टीकादि ग्रन्थो के सहारे बिना एक भी स्थानकपथी विद्वान् (!) अपना लेख सम्पूर्ण एव प्रामाणिक लिख ही नही पाते हैं, फिर भी पूर्वाचार्यों को झूठा ठहराने मे वे अपनी कृतघ्नता नही समझते । यह कैसी विडवना है कि गुड खाना और गुलगुलो से परहेज ।

खड १, पृ० ८८४ पर दी गयी, सदर्भ ग्रन्थ की सूची इस बात की साक्षी है कि आचार्य हस्तीमलजी को प्राचीन जैनाचार्यों पर श्रद्धा, भक्ति, बहुमान और आदर नहीं है । उसी सूची मे स्थानकपथी सत का नाम सन्मान एव बहुमान सूचक विशेषणो से लिखा है ।

आचार्य हस्तीमलजी ने अपने इतिहास की सदर्भ सूची मे जिनसे ज्ञान लिया है उन महान् उपकारी पूर्वाचार्यों के नाम आ० हेमचन्द्र, मलयगिरि, अभयदेवसूरि, राजेन्द्रसूरि ऐसे अबहुमान सूचक शब्द लिखकर और बहुमान सूचक विशेषणो का प्रयोग न कर उनके उपकार का बदला कृतघ्नता से चुकाया है। अन्यथा महाउपकारी पूर्वाचार्यों के नाम लिखने का अवसर प्राप्त हो, वहाँ प्रात स्मरणीय, महोपकारी, महाज्ञानी, पूज्य, पूज्यपाद, परमपूज्य ऐसे विनय, श्रद्धा, भक्ति, सम्मान, बहुमान, आदर और अहोभाव सूचक शब्दो के प्रयोग द्वारा आचार्य की लेखनी पुलकित होनी चाहिए थी। लेखनी को पूर्वाचार्यों के पवित्र विशेषणो से पुलकित करने के बजाय अन्य विषयो मे फालतू पिष्ट पेषण करने वाले आचार्य ने उपकारी के उपकार का बदला चुकाने का अवसर आने पर अपनी लेखनी का सही सदुपयोग नही किया है, जो उनका आघात जनक वर्तन है, क्योकि पूर्वाचार्यो मे जो ज्ञान है उसका अश भी आचार्य मे होना सभव नही है ।

कुछ शताब्दियो से पडित मन्य आधुनिक चितको की ऐसी कुप्रवृत्ति चली है, कि वे जिनसे ज्ञान लेते है उन महान पूर्वाचार्यादि के

नाम हेमचन्द्र, हरिभद्र, यशोविजय, शीलांग, मलयगिरि, ऐसे अबहुमान, अनादर, अविनय और अभक्ति पूर्ण शब्द प्रयोग करके उनके प्रति अपना अभिमान, अनम्रता और अश्रद्धा सूचित करते हैं। महाज्ञानी पूर्वाचार्यादि के पवित्र नाम के आगे पीछे विशेषण न देकर करना चाहिए उतना सम्मान नही करने वालो मे और इस अविनय पूर्ण प्रवृत्ति को बढावा देने मे स्थानकवासी सम्प्रदाय मे आचार्य हस्तीमलजी भी एक हैं जिसका हमे सखेद आश्चर्य है।

उपकारी के उपकार का बदला अपकार से चुकाने की ऐसी कृतघ्नता पूर्ण नीति-रीति को आचार्य भविष्य मे अवश्य सुधारेंगे, हमारी यही आशा है।

अभ्यर्चनादर्हतां मनः प्रसादस्तत. समाधिश्च ।
तस्मादपि नि श्रेयसमतो हि तत्पूजन न्याय्यम् ॥

श्री अरिहंत परमात्मा की अभ्यर्चना से मन की प्रसन्नता, मन की प्रसन्नता से नि श्रेयस-मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिये सभी मुमुक्षु आत्माओ को अरिहंत प्रभु की पूजा अवश्य करना चाहिए। यह न्याय संगत एव उचित है।

—१० पूर्वधर पूज्य उमास्वाति महाराज

[illegible]

आगम शास्त्रो मे जहाँ भी श्रावक के बारह व्रतो का वर्णन आया है वहा सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का वर्णन आया है। सम्यग्दर्शन ग्रहण के बिना बारह व्रत की आराधना निष्फल मानी गई है। अत श्री भगवती आदि सूत्रो मे आनन्द, कामदेव आदि श्रावको के बारह व्रत स्वीकारने की बात आयी है, वहाँ बारह व्रत के पूर्व सम्यग्दर्शन के स्वीकार की बात आती है। क्योकि समकित बिना नवपूर्वी को भी अज्ञानी माना गया है। श्रद्धा भ्रष्ट को जैनागम ने भ्रष्ट कहा है। श्रद्धा-भ्रष्ट जमालि आदि के चारित्र की कीमत फूटी कौडी भी नही मानी गई है।

सुदेव-सुगुरु-सुधर्म पर ही श्रद्धा-विश्वास करना अर्थात् कुदेव, कुगुरु और कुधर्म को त्यागना यह सम्यग्दर्शन है। यानी अरिहत देव और अरिहत देव की प्रतिमा को ही मानना पूजना, अन्य मिथ्यादृष्टि देव-देवियो मे विश्वास नही करना। पच महाव्रत धारी शुद्ध जिनागम प्ररूपक साधुओ को ही गुरु मानना, कुवेष-कुलिंग धारी, उत्सूत्र प्ररूपक, आलू आदि अनतकाय और बासी, द्विदल आदि अभक्ष्य को भक्षण करने वाले को गुरु नही मानना तथा वीतराग श्री अरिहत देव प्ररूपित तत्त्वो पर ही श्रद्धा-विश्वास करना यह सम्यग्दर्शन है।

अबड नाम का एक सन्यासी श्री महावीर भगवान का भक्त बना था। खड १, पृ० ६६१-६६२ पर आचार्य हस्तीमलजी ने अबड सन्यासी का अधिकार लिखा है, किन्तु अबड ने श्री महावीर स्वामी के पास सम्यग्दर्शन को स्वीकार किया था, इस विषय मे आचार्य ने एक शब्द भी नही लिखा है, जो इतिहास लेखक की अपूर्णता का सूचक है।

अबड सन्यासी जब सम्यग्दर्शन को स्वीकार करता है तब भगवान श्री महावीर स्वामी के सामने प्रतिज्ञा करता है कि—

❋❋❋ णण्णत्थ अरिहते वा अरिहत चेइयाणि वा वदिता वा नमसति वा।

[श्री उववाई सूत्र] ❋❋❋

अर्थात—[अबड कहता है, हे भगवन् ! आज से मुझे] अरिहत और अरिहत की प्रतिमा को वदन करना कल्पे, अन्य हरि हरादि और उनकी स्थापना-प्रतिमा को नही।

उक्त सूत्र का समदर्शी लौंकागच्छीय आचार्य श्री अमृतचन्द्र सूरि ने निम्नलिखित अर्थ किया है। यथा

❋❋❋ अरिहत और अरिहत की प्रतिमा की स्थापना ते वदन करवा कल्पे (अन्य नहीं)।

[श्री उववाई सूत्र पृ० २९७] ❋❋❋

स्थानकमार्गी परम्परा के साधु अमोलक ऋषि उक्त सूत्र का कल्पित एव ऊटपटाग अर्थ करते हैं कि—

☸☸☸ फक्त अरिहत और अरिहत के [चैत्य यानी] साधु को (?) ही वन्दन करना-नमस्कार करना यावत् सेवा भक्ति करना कल्पता है। [उववाई सूत्र पृ० १६३] ☸☸☸

मीमासा—यहा अमोलक ऋषि ने "अरिहत चेइयाणि" सूत्र पाठ का कल्पित एव झूठा अर्थ "अरिहत के साधु" ऐसा किया है, जो उनके श्री अमृतचन्द्र आदि लौंकागच्छीय आचार्य ने किये अर्थ से भी विपरीत एव विरुद्ध है तथा कोष और व्याकरण निरपेक्ष भी है।

लोकागच्छ के आचार्यों ने भी मन्दिर मे जिन प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवायी है, ऐसी दशा मे जो स्वय के आचार्यों के विरुद्ध चलते है वे अगर उनसे भी प्राचीन आचार्यों एव शास्त्रो को मान्य न करें और उनसे विपरीत या विरुद्ध चले, तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है ?

अबड सन्यासी के अधिकार मे सम्यग्दर्शन की बात ही आचार्य हस्तीमलजी ने अपने इतिहास मे छिपाई है और उनके पूर्ववर्ति अमोलक ऋषि ने मनमाना कल्पित अर्थ किया है, उनके आदि पुरुष लोकाशाह से इस स्थानकपथ परम्परा की यही विशेषता रही है।

स्थानकपथियो मे कोई "बृहत् शाति स्तोत्र" को मूर्तिपूजा समर्थक पाठो की कांट-छांट करके संक्षिप्त कर रहा है, तो कोई विद्यावन्त चारणमुनियो का नंदीश्वर आदि द्वीप मे सैर-सफर हेतु जाने का लिख रहा है, तो कोई आगम सूत्रो का मनचाहा अट-शट अर्थ कर रहा है, तो कोई परमार्थ नही जानते हुए भी "घटाकर्ण महावीर"

नाम के यक्ष का मन्त्र-जन्त्र छपवा रहा है, तो कोई आलू, बासी, मक्खन आदि अभक्ष्य का भक्षण करने पर भी दया धर्म की बाग पुकार रहा है, तो कोई श्री महावीर स्वामी आदि की मुँहपत्ती बंधी हुई तस्वीर-फोटो छपवाकर बंटवा रहा है, तो कोई निज की तस्वीर युक्त लोकेट अपने भक्तो को दे रहा है, यह कितना असामजस्य ?

तप सयम किरिया करो, मन राखो ठाम।
समकित बिन निष्फल हुए, जिम व्योम चित्राम ।।

—पूज्यपाद ज्ञानविमलसूरिजी महाराज साहब

[प्रकरण–१८]

पू[illegible] र [illegible]ी [illegible] [illegible]ामी [illegible]
में [illegible] ।

धनगिरि ने अपनी सगर्भा पत्नी को छोडकर पूज्य आर्य श्री सिंहगिरिजी से दीक्षा ली थी । जन्म के बाद अपने पिता की दीक्षा की बात सुनकर बालक को जाति स्मरण ज्ञान हो गया और माता से छुटकारा पाने के लिये उसने दिन रात रोना शुरू किया । परेशान माता ने अपने पुत्र को धनगिरि को सौंप दिया । गुरु आर्य श्री सिंहगिरिजी ने भारी वजन होने के कारण बालक का नाम वज्र रखा । बालक वज्र ने साध्वीजी के उपाश्रय मे रहते रहते साध्वियो द्वारा रटाते हुए शास्त्र पाठो को सुन सुनकर ग्यारह अग कठस्थ कर लिये । बालक वज्र को बाद मे आर्य श्री धनगिरि ने दीक्षा दी । आपने क्रम से श्री भद्रगुप्ताचार्य के पास १० पूर्व का अध्ययन किया और आर्य श्री धनगिरिजी ने आपको अपना पट्टधर बनाया । आपको आकाशगामिनी लब्धि थी, जिसके प्रयोग से आप समस्त श्री जैनसघ को पट्ट पर बैठाकर दुर्भिक्ष क्षेत्र से सुभिक्ष के क्षेत्र मे लाये थे । उस सुभिक्ष क्षेत्र का राजा बौधधर्मी था, जो जैनधर्मावलम्बियो से द्वेष रखता था । पवित्र पर्युषणा पर्व मे तीर्थंकर परमात्मा के पूजन हेतु पुष्प चाहिए थे, जिनको देने के लिये बौद्ध राजा ने मना कर दिया था । तब आर्य श्री वज्रस्वामी विद्या द्वारा आकाश मार्ग से हिमवत पर्वत पर गये और श्री देवी के

पास से कमल तथा पितृमित्र देव के पास से बीस लाख पुष्प लाकर प्रतिस्पर्द्धि बौद्धो के सामने जैन धर्म की प्रभावना करते हुए शासनोन्नति का महान कार्य किया था। इस शासन प्रभावना से प्रभावित होकर बौद्धराजा एव अन्य प्रजा भी जैनधर्मी बन गये थे।

दशपूर्वधर शासन प्रभावक महान जैनाचार्य श्री वज्रस्वामी के विषय मे खड २, पृ० ५७८ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

☼☼☼ आपने अ ामिनी विद्या का प्रयोग करके सघ को सुभिक्ष मे पहुँचाया था। वहाँ का राजा बौद्धधर्मानुयायी होने के कारण जैन उपासको के साथ विरोध रखता था, पर अ के प्रभाव से वह भी श्रावक बना और इससे धर्म की बडी प्रभावना हुई। ☼☼☼

मीमासा—देखिये! यहाँ कैसा गोल-मोल एव अप्रमाणिक लिखा गया है। बौद्धराजा पर आर्य श्री वज्रस्वामी का कौन सा प्रभाव पडा था, जिसके कारण बौद्धधर्म को छोडकर वह जैनधर्मी बन गया। इस तथ्य को सदिग्ध रखकर आचार्य ने अपनी पुरानी खासियत के मुताबिक जिनमूर्तिपूजादि के विषय मे सत्य से ही अनादर किया है। क्योकि बौद्ध राजा के जैनधर्मी बनने के पीछे आर्य श्री वज्रस्वामी का आगाशगामिनी विद्या द्वारा आकाशमार्ग से जाकर श्रीदेवी के पास से पद्म एव पितृमित्र देव के पास से २० लाख पुष्प लाना आदि कारण है यह सत्य है। जिन मंदिर और जिनप्रतिमापूजा के विषय मे मतिभ्रम और सम्मोह के कारण स्थानकपथी कभी भी सत्य नही लिख सकते हैं।

फिर भी आर्य श्री वज्रस्वामी आकाशगामिनी विद्या से आकाश मार्ग से भगवान की पुष्पपूजा हेतु पुष्प लाये थे और जैनमतावलम्बियो के मनोरथो की पूर्ति की थी। इस तथ्य का

स्वीकार आचार्य द्वारा दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा की साम्यता दिखाने के अवसर पर अनायास ही हो गया है। खड २, पृ० ५८५ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼☼☼ आर्य वज्र के गगन विहारी होने, जैनो के साथ बौद्धो द्वारा की गयी धार्मिक उत्सव विषयक प्रतिस्पर्धा मे आर्यवज्र द्वारा जैनधर्माव-लम्बियों के मनोरथो की पूर्ति के साथ ि ासन की महिमा बढाने आदि आर्य-वज्र के जीवन की घटनाओ एव सम्पूर्ण कथावस्तु की मूल आत्मा मे दोनो परम्पराओ की पर्याप्त साम्यता है। ☼☼☼

मीमासा—आर्य श्री वज्रस्वामी गगन विहारी क्यो हुए? जैन और बौद्धो मे कौनसे धार्मिक विषय मे प्रतिस्पर्धा हुई? आर्य श्री वज्रस्वामी ने जैनधर्मावलम्बियो के कौन से मनोरथो की पूर्ति की थी? दोनो परम्परा मे दिगम्बर और श्वेताम्बर आते हैं जो मूर्तिपूजा मे विश्वास रखते हैं, फिर स्थानकपथियो का स्थान कहा है? आदि अनेक प्रश्नो को आचार्य ने अस्पष्ट ही रखा है, जो अनुचित ही है।

यहा आचार्य ने धार्मिक उत्सव विषयक प्रतिस्पर्धा का उल्लेख किया है, किन्तु हिम्मत और सत्यता पूर्वक यह नही लिखा कि बोद्धराजा ने जैनियो को पर्युषणा पर्व मे जिनप्रतिमा की पूजा हेतु पुष्प देने की मना करदी थी। तब आर्य श्री वज्रस्वामी ने जैनधर्मावलम्बियो के मनोरथ की पूर्ति आकाशगामिनी विद्या द्वारा पुष्प लाकर की थी। इससे प्रभावित होकर बौद्धधर्मी राजा एव प्रजा जैनधर्मी बने थे, इस सत्य तथ्य को आचार्य ने छिपाया है। एक बात और भी है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो जैन परम्परा मूर्तिपूजा मे विश्वास करती है, अत श्री वज्रस्वामी के कथानक मे दोनो परम्पराओ की साम्यता होना स्वाभाविक ही है। किन्तु इन दोनो परम्परा की श्रद्धा से विपरीत श्रद्धा स्थानकपथी की हैं, अत वे अपने आप ही जैनाभास

सिद्ध हो जाते हैं, ऐसी दशा मे वे लोग जैनधर्म के मूल से सम्बन्धित जिनमूर्ति और जिनमूर्तिपूजा की प्राचीनता एव सत्यता का समर्थन क्यो करेगे ?

यहाँ वही पुरानी लकीर के फकीर बनकर आचार्य हस्तीमलजी ने महान जैनाचार्य १० पूर्वधर आर्य श्री वज्रस्वामी के चरित्र को मूर्तिपूजा से सबधित होने के कारण अप्रमाणिक लिखा है और सत्य को तोड-मरोड करके प्रस्तुत किया है। इससे जैन इतिहास लेखन के सम्बन्ध मे की हुई उनकी तटस्थता और सत्यता की प्रतिज्ञा का सर्वथा भग ही हुआ है, जो अत्यन्त खेदजनक है।

जिसको जैनागम हृदयगम नही हुए हैं, वह चाहे आचार्य पदाधिरूढ क्यो न हो, जैन सिद्धान्त का दुश्मन ही है, क्योकि जैनागम के विषय मे वह दिङ्मूढ है।

—आगमेतर सबसे प्राचीन शास्त्र श्री उपदेशमाला

अति प्राचीन भव्य जिन प्रतिमा

[प्रकरण-१६]

[illegible]
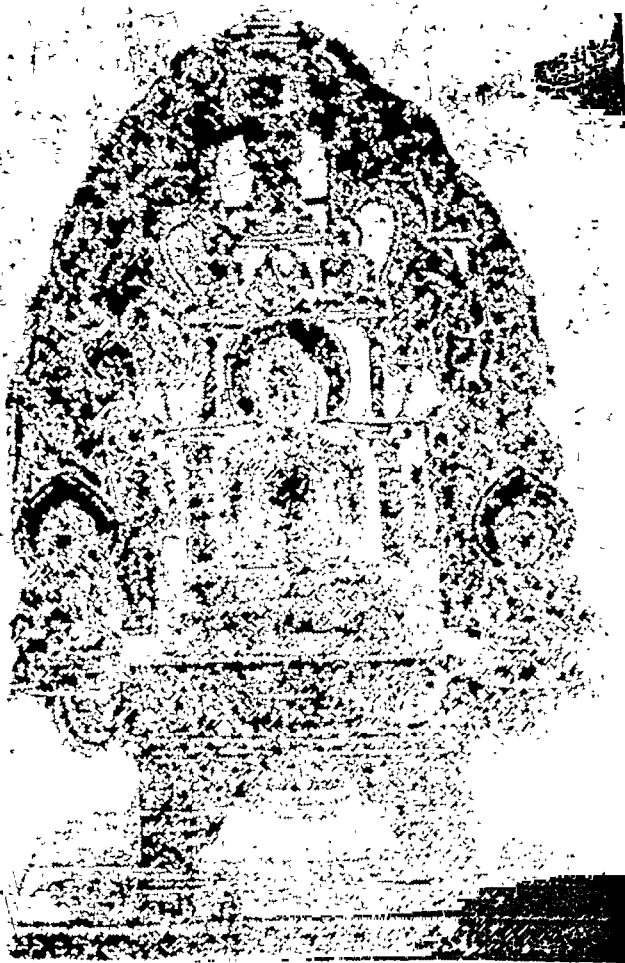
चातुर्मास मे दर्शनार्थियो के लिए चौका लगवाने की प्रेरणा करना, निज की प्रतिष्ठा एव प्रदर्शन हेतु कोसो की दूरी से भक्तजनो को दर्शन के बहाने बुलाना, निज की तस्वीरें छपवाना-बँटवाना, पत्रिका एव साप्ताहिक पत्र आदि निकालना, श्रावको का सम्मेलन करवाना, उपाश्रय-स्थानक बनवाना, गोठ-प्रीतिभोज करवाना, नारियल आदि की प्रभावना बँटवाना, अपने गुरु का जन्मदिन मनवाना तथा इस हेतु पत्रिका छपवाना आदि अनेक बाह्य क्रियाकाड और बाह्य आडम्बर करने मे हिंसा और पाप नही मानने वाले दयाधर्म के ठेकेदार (!) स्थानकपथियो जिनमन्दिर निर्माण, जिन प्रतिमा प्रतिष्ठा, जिन प्रतिमा पूजा, सिद्धचक्र आदि पूजन, स्नात्र पूजा, स्वामी वात्सल्य, तीर्थयात्रा, यात्रासघ, जलयात्रा का जलूस आदि जैनधर्म सम्बन्धित प्राचीन और जैनशासनोन्नतिकारी जैन शास्त्र कथित पवित्र क्रियाओ को मनभर के कोसते हैं और बाह्य आडम्बर कहकर उनका अनादर एव अपलाप करते हैं, यह अत्यन्त गलत कृत्य है।

वैसे देखा जाए तो जिस क्रियादि को आचार्य हस्तीमलजी अपनी "सिद्धान्त प्रश्नोत्तरी" नामक किताब मे बाह्य आडम्बर और बाह्य क्रियाकाड कहते हैं, वह जैनधर्म की कौनसी प्रवृत्ति मे नही है। तीर्थंकर परमात्मा का समवसरण मे रत्न के सिंहासन पर बैठना, नव-

कमल पर चलना आदि क्रियाएँ क्या बाह्य आडम्बर नही है ? देवो द्वारा होती पुष्पवृष्टि, चँवर ढुलाना तथा सूर्याभदेव और जीणकुमारियो का नाटक आदि भगवान श्री तीर्थंकर की मौजूदगी मे भी होता था, इन प्रवृत्तियो को आप्त भगवान ने बाह्य आडम्बर कहकर हेय या त्याज्य नही कहा है ।

आचार्य श्री मानतु ग सूरि महाराज ने भी "भक्तामर स्तोत्र" श्लोक–३ ३ मे तीर्थंकरो के बाह्याडम्बर-ठाठ-शोभा-विभूति का वर्णन किया है, यथा—

इत्थ यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र ।
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ॥

महान तत्त्व ज्ञानियो ने इस बाह्याडम्बर को भी अन्य जैनेतर भद्रक भव्य जीवो को जैनधर्म के प्रति आकर्षण करने और जैनधर्म प्रेमी बनाने के लिये प्रबल हेतु माना है ।

मगध सम्राट श्रेणिक, कूणिक, दशार्णभद्र आदि बडे बडे राजा महाराजा भी भगवान के दर्शन हेतु बडे ठाट बाट के साथ गये हैं। और यह पूर्ण सत्य है कि आप्त भगवान ने कभी भी इनको आडम्बर की सज्ञा नही दी है ।

खड १, पृ० ६१७ पर आचार्य लिखते हैं कि—

राजा श्रेणिक को भगवान पधारने की सूचना मिली तो वे राजसी शोभा मे अपने अधिकारियो, अनुचरो और पुत्रो आदि के साथ भगवान की वन्दना करने को निकले और विधिपूर्वक वदन कर सेवा करने लगे ।

मीमासा—श्रेणिक का राजसी वैभव से जाने मे मार्गगमन जन्य हिंसा तो हुई ही होंगी, फिर आप्त भगवान ने क्यो नही कह दिया कि—"यह दयाधर्म के सिद्धान्त के विरुद्ध है।" यदि भगवान एक बार श्रेणिक जैसे विनयवन्त भक्त को निषेध कर देते तो अन्य राजा कभी वंदन हेतु ऐसे आडम्बर सहित नही जाते।

राजा दशार्णभद्र ने सर्वश्रेष्ठ शोभा के साथ भगवान की वन्दना के लिये जाने की सोची और इन्द्र ने उनकी सर्वश्रेष्ठ शोभा का गर्व चूर्ण कर दिया, बाद मे उसने चारित्र-दीक्षा ली। खड १, पृ० ६५८ पर आचार्य लिखते हैं कि—

卐 卐 卐 उसने (दशार्णभद्र ने) बडी धामधूम से प्रभु वन्दन की तैयारी की और चतुरग सेना व राज परिवार सहित सजधज कर वन्दन को निकला। 卐 卐 卐

मीमासा—धूमधाम और सजधज कर यानी बाह्याडम्बर से जाने की प्रवृत्ति को जैन शास्त्रो मे कही भी अनुचित नहीं ठहराया है, दयाधर्मियो को यह विचारने की बात है।

खड १, पृ० ७४५ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

卐 卐 卐 तदनन्तर कूणिक ने अपने नगर मे घोषणा करवाकर नागरिको को प्रभु के शुभागमन के सुसवाद से कराया और अपने समस्त अन्त पुर, परिजन, पुरजन, अधिकारी वर्ग एव चतुरगिणी सेना के साथ प्रभुदर्शन के लिये प्रस्थान किया। 卐 卐 卐

मीमासा—आप्त भगवान ने एव प्राचीन शास्त्रकारो ने जैनधर्म के प्रचार, प्रसार एव उन्नतिकारक ऐसी प्रवृत्तियो को कभी भी

बाह्याडम्बर नही कहा है। बस एव रेल मे बैठकर सैकडो मीलो की दूरी से वदनार्थ आने वाले भक्तो को आचार्य हस्तीमलजी ने क्या कभी रोका है ? कि—"वाहन आदि से आने मे महापाप यानी हिंसा होती है, अत सच्चे मन से या भाव से मेरी वन्दना वहा घर पर बैठे हुए ही करलो, इतने सैकडो मीलो की दूरी से आना हिंसा, अधर्म, पाप और बाह्याडम्बर है।"

सम्प्रदाय के मोह बन्धन मे फँसकर या अपनी मनकल्पित हिंसा का शोर-शराबा करके जैनधर्म के प्रचार प्रसार की शुभ प्रवृत्तियो को भी बाह्याडम्बर या बाह्य क्रियाकान्ड कहकर निन्दा करने वाले दयाधर्मियो (!) को निज की करणी और कथनी जाचनी चाहिए। और अगर इसमे बाह्याडम्बर और हिंसा आदि होवे तो ईमानदारी पूर्वक उनको त्यागना चाहिए।

खड १ (पुरानी आवृत्ति) पृ० ७० पर आचार्य लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ खेद है कि हम अपनी दृष्टि से किसी भी विषय के अन्तस्तल तक नहीं पहुँचते और पुरानी लकीर क ही फकीर बने हुए हैं। ✲ ✲ ✲

मीमासा—हमारा भी यही कथन है कि पुरानी लकीर के फकीर बने रहने के लिये उन्हे कौन बाध्य करता है ? जिनमन्दिर, स्नात्रपूजा और तीर्थयात्रादि प्रवृत्तियो को हिंसा एव बाह्याडम्बर कहकर विरोध करने वालो और "आरम्भे नत्थि दया" यानी "हिंसा रूप आरम्भ मे दया नही है" ऐसा आगे पीछे का सदर्भ रहित ऐकान्तिक वचन बोलने वालो की किताब छपवाना, कबूतरो को चुग्गा डालना, अपनी तस्वीर छपवाना, भक्तजनो को मीलो की दूरी से दर्शनार्थ

बाह्याडम्बर नही कहा है। बस एव रेल मे बैठकर सैकडो मीलो की दूरी से वदनार्थ आने वाले भक्तो को आचार्य हस्तीमलजी ने क्या कभी रोका है ? कि—"वाहन आदि से आने मे महापाप यानी हिंसा होती है, अत सच्चे मन से या भाव से मेरी वन्दना वहा घर पर बैठे हुए ही करलो, इतने सैकडो मीलो की दूरी से आना हिंसा, अधर्म, पाप और बाह्या-डम्बर है।"

सम्प्रदाय के मोह बन्धन मे फँसकर या अपनी मनकल्पित हिंसा का शोर-शराबा करके जैनधर्म के प्रचार प्रसार की शुभ प्रवृत्तियो को भी बाह्याडम्बर या बाह्य क्रियाकान्ड कहकर निन्दा करने वाले दयाधर्मियो (!) को निज की करणी और कथनी जाचनी चाहिए। और अगर इसमे बाह्याडम्बर और हिंसा आदि होवे तो ईमानदारी पूर्वक उनको त्यागना चाहिए।

खड १ (पुरानी आवृत्ति) पृ० ७० पर आचार्य लिखते हैं कि—

※ ※ ※ खेद है कि हम अपनी दृष्टि से किसी भी विषय के अन्तस्तल तक नहीं पहुँचते और पुरानी लकीर के ही फकीर बने हुए हैं। ※ ※ ※

मीमासा—हमारा भी यही कथन है कि पुरानी लकीर के फकीर बने रहने के लिये उन्हे कौन बाध्य करता है ? जिनमन्दिर, स्नात्रपूजा और तीर्थयात्रादि प्रवृत्तियो को हिंसा एव बाह्याडम्बर कहकर विरोध करने वालो और "आरम्भे नत्थि दया" यानी "हिंसा रूप आरम्भ मे दया नही है" ऐसा आगे पीछे का सदर्भ रहित ऐकान्तिक वचन बोलने वालो की किताब छपवाना, कबूतरो को चुग्गा डालना, अपनी तस्वीर छपवाना, भक्तजनो को मीलो की दूरी से दर्शनार्थ

बुलवाना, उनके निमित्त चौका-चलाने की प्रेरणा देना, नारियल आदि की प्रभावना बांटना, गोठ-प्रीतिभोज करवाना आदि प्रवृत्तियां दयामय धर्म से प्रेरित है या हिंसामय धर्म से ? इसमे बाह्याडम्बर है कि जैन-शासनोन्नति है ? आश्रव-पाप है या धर्म-सवर ? इन प्रश्नो का आचार्य स्वय को प्रामाणिक एव शास्त्रीय उत्तर देना चाहिए।

भगवान की आज्ञा के आदर से मोक्ष
और अनादर से ससार होता है।

—कलिकाल सर्वज्ञ पूज्य हेमचन्द्राचार्य म०

[प्रकरण—२०]

ो ं भी ि वी

यद्यपि शास्त्र स्वय मगल स्वरूप हैं, फिर भी विघ्नो की शान्ति हेतु पूर्वाचार्यों ने शास्त्र के आदि, मध्य एव अन्त मे लिपि मे लिखकर भी द्रव्य और भाव मगल की प्रशस्त प्रवृत्ति की है।

श्री भगवती सूत्र मे स्वय शास्त्रकर्ता महर्षि ने "नमो बभीए लिवीए"—यानी ब्राह्मी लिपि को नमस्कार—ऐसा लिखकर द्रव्य-भाव मगल किया है। किन्तु स्थापना निक्षेप को द्रव्य-भाव मगल स्वरूप न मानने वाले स्थानकपथी आचार्य हस्तीमलजी शास्त्रकर्ता के इस कथन पर स्वमान्यता विरोध के कारण बहुत रुष्ट हैं। पूज्य शास्त्रकार महर्षि के उक्त कथन को झूठा करने हेतु आचार्य ने बहुत सी प्राचीन प्रतिया भी ढू ढ डाली हैं, ऐसा उन्होने खड २, पृ० १७०-१७१ पर स्वीकार भी किया है, किन्तु उन्हे कही पर कोई विरोध का अश नही मिला। अगर कही एक प्रति मे भी विरोध का अल्पसा आधार मिल जाता तो क्या था ? आचार्य हो-हा का शोर करने मे ही अपना श्रेय समझते, किन्तु उनका यह प्रयास भी असफल ही रहा। अततो गत्वा असत्य का सहारा लेकर खड २, पृ० १७० पर आचार्य व्यर्थ की कल्पित कल्पनाएँ करते है कि—

✻✻✻ हो सकता है शास्त्र लिपिबद्ध हुए होगे तब पीछे से "नमो बभीए लिवीए" पाठ शास्त्र मे घुसा दिया होगा। ✻✻✻

मीमासा—आचार्य का यह कैसा भद्दा तर्क है कि—"पूर्वाचार्यो ने बेईमानी करके "नमो बभीए लिवीए" इस पाठ को श्री भगवती सूत्र मे घुसा दिया होगा," किन्तु आचार्य का ऐसा लिखना अल्पज्ञता का ही सूचक है। पूर्वाचार्यों के कथन पर "सिद्धस्य गतिश्चिंतनीया:" इस उक्ति को आचार्य हस्तीमलजी क्यो मान्य नही करते हैं? श्री भगवती सूत्र कथित आदि एव अन्तिम मगल के विषय मे आचार्य खड २, पृ० १७० पर इस प्रकार लिखते हैं कि—

✱ ✱ ✱ , ागी के पाचवें अग "व्याख्या प्रज्ञप्ति (अपरनाम श्रीमती भगवती सूत्र) की आदि मे "पच परमेष्ठी ार मत्र" 'णमो बभीए लिवीए' और "णमो सुयस्स" पद से मगल किया है और अन्त मे सघ स्तुति के पश्चात् गौतमादि गणधरो, ि व्याख्या प्रज्ञप्ति, द्वादशागी रूप गणिपिटक, श्रु त देवता, प्रवचन देवी, कुम्भधर यक्ष, ब्रह्मशाति, वैराट्या देवी, विद्यादेवी और अंतहुडी को ार किया गया है। ✱

मीमासा—परमपूज्य सूत्रकार महर्षि ने "नमो बभीए लिवीए" ऐसा लिखकर द्रव्य-भाव मगल-स्वरूप मानकर लिपि को भी नमस्कार किया है। इस सूत्र की व्याख्या-टीका लिखने वाले धुरधर-विद्वान नवागी टीकाकार पूज्यपाद अभयदेवसूरिजी महाराज ने भी सूत्रकार महर्षि द्वारा किये गये मगल के अनुरूप ही टीका रची है, कि— "नमो बभीए लिवीए" ऐसा शास्त्रकार द्वारा मगल किया गया है और प्राचीन प्रतियो मे भी इसी प्रकार का पाठ मिलता है। इन सब बातो से स्पष्ट सिद्ध है कि स्थापना निक्षेप रूप ब्राह्मी लिपि को भी शास्त्रकार महर्षि ने द्रव्य भाव मगल स्वरूप माना है। फिर भी इस निःसन्देह सत्य तथ्य पर भी आचार्य ने खड २, पृ० १७० से १७२ तक मे लम्बी-चोडी मनघडत कल्पना चलायी है, और पूर्वाचार्यों को झूठा करने का दुस्साहस किया है कि—

✲✲ हो ा है शास्त्र लिपिबद्ध हुए होगे तब पीछे से "नमो बभीए लिवीए" पाठ मे घुसा दिया होगा। ✲✲✲

मीमासा—बात तो यह है कि 'हो सकता है' ऐसा लिखना इतिहास के लेखन मे सर्वथा अप्रामाणिक एव निरर्थक ही है, यह बात इतिहासज्ञाभास भूलें इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

"तस्वीर सिर्फ परिचय के लिये" यानी तस्वीर को वदनादि करोगे तो मिथ्यात्व का पाप लगेगा ऐसा कहने वालो को श्री भगवती सूत्रकर्ता एव टीकाकर्ता पूर्व महर्षि का कथन "नमो बभीए लिवीए" पर विचार करके स्थापना विषयक सत्य के मार्ग को प्रामाणिकता-पूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

टीका चूर्णि भाष्य उवेख्या, उवेखी निर्युक्ति।
प्रतिमा कारण सूत्र उवेख्या, दूर रही तुझ मुक्ति।।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय

अलौकिक श्री पार्श्वनाथ भगवान
हसामपुरा, उज्जैन [म प्र.]
[विक्रम की १० वी सदी पूर्व]

[प्रकरण-२१]

ै ट ा ौ ि ंि र ा ि ि ा

चैत्य शब्द का अर्थ जिनमन्दिर अथवा जिनप्रतिमा ऐसा होता है। स्थानकपथी लोग गुरुवदन के 'तिक्खुत्ता" नामक पाठ में "देवय चेइय पज्जुवासामि" ऐसा बोलते हैं। किन्तु "चेइय" शब्द का अर्थ वे गलत करते हैं। 'चेइय' यानी "चैत्य" शब्द का अर्थ स्थानकपथी सन्तो द्वारा विविध पुस्तको मे विविध किया गया है। 'चेइय पज्जुवासामि" का शास्त्रीय अर्थ "जिनप्रतिमा की तरह मैं (गुरु की) उपासना करता हू," ऐसा होता है। एक इतिहासकार के नाते आचार्य हस्तीमलजी को आगमशास्त्रो, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य, वृत्ति, चूर्णि, भाष्य तथा टीकादि और शब्दकोष-व्याकरण के सहारे से स्वमान्यता को दूर रखकर तटस्थता एव प्रामाणिकता से 'चेइय' यानी 'चैत्य' शब्द का अर्थ करना अत्यन्त आवश्यक था किन्तु इस विषय मे आचार्य ने अधेरे मे ही रहना उचित समझा है और ऐसा करके उन्होने अपने इतिहास को भी अपूर्ण रखा है। फिर भी खड २, पृ० ६२३ से ६२८ तक आचार्य ने "चैत्यवास" के विषय मे चैत्य का अर्थ नही करके ही लम्बी चौडी निरर्थक चर्चा चलायी है। किन्तु 'चैत्य' का अर्थ "जिनमदिर" होता है इस तथ्य की पुष्टि उनसे मानो या न मानो हो ही गयी है।

जैनागमो मे जहाँ भी चैत्य शब्द आता है, वहाँ स्थानकपथी सत आदि चैत्य शब्द का जिन प्रतिमा और जिनमदिर ऐसा प्रकरण

सुलभ अर्थ को छोडकर, एकान्तमार्ग का आश्रय करके चैत्य का अर्थ कही ज्ञान, कही साधु, कही कामदेव की प्रतिमा आदि कर देते हैं, जो अप्रमाणिक है। ज्ञान के लिये शास्त्र मे कही भी चैत्य शब्द नही लिखा है, कि मतिचैत्य, श्रुतचैत्य इत्यादि। एव शब्दकोष और व्याकरण मे साधु के लिये निर्ग्रन्थ, श्रमण, मुनि आदि शब्द प्रसिद्ध है न कि चैत्य।

पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज ने कोष मे 'चैत्य' शब्द का अर्थ जिनप्रतिमा एव जिनमदिर किया है, यथा—

"चैत्य जिन बिम्ब तदोक ।"

"अरिहत चेइयाणं" शब्द का अर्थ श्री आवश्यक सूत्र के पाँचवें कायोत्सर्ग नामक अध्ययन मे 'जिन प्रतिमा' ऐसा किया है, यथा—

"अर्हन्त तीर्थंकरा, तेषा चैत्यानि प्रतिमालक्षणानि"।

नवागी टीकाकार पूज्य श्री अभयदेवसूरिजी महाराज ने 'चैत्य' शब्द का अर्थ "इष्ट देव की प्रतिमा" ऐसा किया है। यथा—

"चैत्यम् इष्टदेव प्रतिमा" [भगवती सूत्र, शतक २, उद्देश १]

प्रवचन सारोद्धार की वृत्ति मे तथा सूर्य प्रज्ञप्ति मे चैत्य का अर्थ जिनप्रतिमा तथा उपचार से जिनमदिर ऐसा किया है।

आचार्य हस्तीमलजी ने चैत्य शब्द का शास्त्र कथित अर्थ ढूढा होता तो स्वय को और अन्य को भ्रम मे रखने का पर्दा फाश हो सकता था।

स्थानकपथी सत एव पडित चैत्य शब्द का अर्थ करने में कैसी दगाबाजी करते है यह देखिये। श्री उववाई सूत्र मे अबड श्रावक का अधिकार आता है, जो पहिले सन्यासी था। जब श्री महवीर स्वामी के समक्ष बारह व्रत धारण किये तब उसने बारह व्रत रूप महल की नीव के समान 'सम्यग्दर्शन व्रत' सर्वप्रथम स्वीकार किया था। वह श्री महावीर भगवान के सामने यह प्रतिज्ञा करता है कि—

✲✲✲ णण्णत्थ अरिहते वा अरिहत चेइयाणि वा वदिता वा नमसति वा।

[श्री उववाई सूत्र] ✲✲✲

अर्थात—वीतराग श्री अरिहत तथा अरिहत का (चैत्य यानी) जिन प्रतिमा वादवा कल्पे अन्य नही।

उक्त सूत्र का स्थानकपथी सत अमोलक ऋषि अप्रमाणिक एव व्याकरण और शब्द कोष निरपेक्ष अर्थ करते हैं कि—

✲✲✲ फक्त अरिहत और अरिहत के [चैत्य यानी] साधु को ही वन्दन करना, नमस्कार करना यावत् सेवाभक्ति करना कल्पता है। [उववाई सूत्र, हिन्दी अनुवाद, पृ० १६३] ✲✲✲

मीमासा—यहा चैत्य का कल्पित अर्थ साधु किया है, जो स्वमतिकल्पित एव शास्त्र निरपेक्ष है। क्योकि श्री भगवती सूत्र मे असुरकुमार देवता सौधर्म देवलोक मे जाते हैं, तब एक अरिहत दूसरा चैत्य अर्थात् जिनप्रतिमा और तीसरा अनगार यानी साधु (मुनि) इन तीनो का शरण करते हैं ऐसा कहा है, यत —

✲✲✲ नन्नत्थ अरिहते वा अरिहत चेइयाणि वा भावी अप्पणो अणगारस्स वाणिस्साव उड्ढ उप्पयति जाव सोहम्मो कप्पो। ✲✲✲

इस पाठ मे (१) अरिहत (२) चैत्य और (३) अनगार, यह तीन का शरण कहा है। यदि चैत्य शब्द का अर्थ साधु होता तो 'अनगार' शब्द पृथक् क्यो कहा ? अत चैत्य का अर्थ साधु (मुनि) करने वाले स्थानकपथी झूठे साबित होते हैं।

चैत्य शब्द का दूसरा कल्पित अर्थ अमोलक ऋषि 'ज्ञान' करते हैं, यह भी देखिये। श्री भगवती सूत्र मे गणधर श्री गौतमस्वामी तीर्थंकर महावीर स्वामी को चारणमुनि के उत्पात [विद्याबल से छलाग लगाने की शक्ति) के विषय मे पूछते हैं कि—

✲✲✲ "विज्जाचारणस्स भते ! उड्ढ केवइए गइ विसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से ण इत्तो एगेण उप्पाएण णदणवणे समोसरण करई, करित्ता तहिं चेइयाइ वदइ, वदइत्ता बितिएण उप्पाएण पडगवणे समोसरण करई, करित्ता तहिं चेइयाइ वदई, वदइत्ता तओ पडिणियत्तई, पडिणियइत्ता, इहमागच्छई, इहमागच्छित्ता इह चेइयाइ वदई। विज्जाचारणस्स ण गोयमा ! उड्ढ एवइए गई विसए पण्णत्ते।" [भगवती सूत्र—शतक २०, उद्देश ९] ✲✲✲

उक्त सूत्र का शास्त्रोक्त अर्थ—"हे भगवन् ! विद्याचारण लब्धिवाले मुनियो का ऊर्ध्व मे गमन का कितना विषय कहा है' ? [भगवान श्री महावीर स्वामी उत्तर देते हैं कि—] हे गौतम ! विद्याचारण मुनि यहा से एक उत्पात मे नदनवन मे विश्राम लेवे, वहा के चैत्य यानी जिनबिब [प्रतिमा] को वान्दे, वहाँ के जिनचैत्य (जिनबिम्ब) को वन्दन करके (पर्युपासना करके) पडकवन मे जाए, वहा चैत्य यानी जिनबिब को वन्दन करके (पर्युपासना करके) फिर स्वस्थान लौटे और स्वस्थान के (मध्यलोक के अशाश्वत) जिनबिम्ब

[प्रतिमा] को वान्दे । हे गौतम ! विद्याचारण के विषय मे ऊर्ध्वगमन का इतना विषय है ।"

उक्त सूत्र का स्थानकपथी सत अमोलक ऋषि आगमनिरपेक्ष एव स्वमति कल्पित अर्थ इस प्रकार करते हैं—

✲ ✲ ✲ गौतम का प्रश्न—हे भगवन् ! विद्याचारण का ऊर्ध्व गमन का कितना विषय कहा है ?

अहो गौतम ! विद्याचारण मुनि एक उत्पात मे यहाँ से उडकर मेरु-पर्वत के नन्दन वन मे विश्राम लेवे । वहा (चैत्य यानी) "ज्ञानी के ज्ञान" का गुणानुवाद करे (?) वहा से दूसरे उत्पात मे पडकवन मे समवसरण करे (विश्राम लेवे) वहा पर भी ज्ञानी के ज्ञान का गुणानुवाद करे (?) और वहाँ से भी पीछा अपने स्थान पर आवे । अहो गौतम ! विद्याचारण मुनि का ऊर्ध्वगमन का इतना विषय है । ✲ ✲ ✲

मीमासा—स्थानकपथी सत अमोलक ऋषि ने उक्त प्राकृत सूत्र का "इह चेइयाइ वदई" [यानी यहाँ आकर अशाश्वत जिनमन्दिर को वान्दे] इतने शब्दो का हिन्दी अनुवाद करना ही छोड दिया है जिससे उनकी बेईमानी जाहिर होती है ।

अमोलक मुनिजी ज्ञानियो के अरूपी ज्ञान के वन्दन हेतु चारणमुनियो को पडकवन और नन्दनवन मे भेज रहे हैं, मानो पडकवन और नदनवन मे ज्ञानी के ज्ञान के ढेर पडे होगे । पडकवन और नदनवन मे शाश्वत जिन मन्दिर है, इस तथ्य की सिद्धि न होने पाए, इस कारण अमोलक ऋषिजी असत्य का सहारा लेकर चैत्य का अर्थ ज्ञान करते है जो सर्वथा अप्रमाणिक है । स्थानकपथी अमोलक ऋषि की साहसिकता देखिये कि ज्ञानी के अरूपी ज्ञान के वन्दन हेतु पडकवन और नन्दनवन मे

भेजकर महाज्ञानी चारणमुनियो को भी वे उल्लू बना रहे हैं। क्या चारणमुनि इतने मूर्ख हैं कि अरूपी ज्ञान का यहा बैठे बैठे वदन न करके लब्धि का प्रयोग करके वहाँ जाए ? और नदनवन एव पडकवन मे जाने हेतु लब्धि का प्रयोग करने पर भी क्या वहाँ ज्ञानी के ज्ञान के भडार भरे पडे हैं कि गुणानुवाद करने हेतु इतने योजनो की लम्बी यात्रा करें।

पडकवन और नदीश्वर द्वीप स्थित शाश्वत जिन मन्दिरो मे चारण मुनि जाते हैं और वहा चैत्यवदन करते है इस शास्त्रीय तथ्य को सत्य होता देखकर नितात असत्य का सहारा लेकर स्थानकपथी महा विद्वान रतनलालजी डोशी (शैलावा वाले) "जैनागम विरुद्ध मूर्तिपूजा भाग-१" पृ० १६६ पर महा साहस पूर्वक लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ हमारे विचार से [चारणमुनि का] वहा जाने का मुख्य कारण नवनवन की "सैर" करने का ही हो सकता है, क्योकि यह भी एक छद्मस्थता की पलटती हुई चञ्चल विचार धारा का परिणाम है। ☼ ☼ ☼

मीमासा—स्थानकपथी महापडित रतनलालजी की छद्मस्थता की पलटती हुई चचल विचारधारा का परिणाम देखिये कि वे पडितजी छट्ठे और सातवें गुणस्थानक मे स्थित, महासयमी-ज्ञानी चारण मुनियो को पडकवन और नदीश्वर द्वीप मे सैर-सफर के लिये भेजने की मूर्खता कर रहे हैं और चारणमुनियो की नदीश्वर द्वीपादि मे जाने की प्रवृत्ति को छद्मस्थता की चचलधारा का परिणाम कहने पर तो, तीर्थंकरो और केवलज्ञानियो को छोडकर अन्य सब ज्ञानियो की प्रवृत्तियाँ गलत कहने की अज्ञानता भी वे पडितजी कर रहे हैं।

वास्तव मे चाहे अमोलक ऋषिजी हो, चाहे आचार्य हस्तीमलजी हो या पडित रतनलालजी डोशी हो, सभी स्थानकपथी ही

दृष्टिराग के पूर्वग्रह से ग्रसित एव मिथ्यात्व के रग से ऐसे रगे हुए हैं कि वे सिद्धायतन, जिनचैत्य, जिनमदिर आदि की बात आने पर सत्य का पक्ष छोडकर जल्दी से झूठ का ही सहारा लेने पर उतारू हो जाते हैं।

श्री महावीर स्वामी के शासन मे वीर सवत् ८८२ से ऐसा समय आया कि कितनेक जैन मुनि शिथिलाचारी बन गये, मदिर सबंधित द्रव्य यानी "देवद्रव्य" का भक्षण करने लगे, उनकी विहार आदि की चर्या शिथिल हो गई। वे जिनमन्दिर मे ही रहने लगे इस कारण वे "चैत्यवासी" कहलाये।

आचार्य हस्तीमलजी ने जैनधर्म का मौलिक इतिहास, खड २, पृ० ६२३ से ६२८ तक चैत्यवास के विषय मे लम्बी-चौडी वार्ता की है, किन्तु 'चैत्य' का अर्थ उन्होने अस्पष्ट और सदिग्ध ही रखा है। पृ० ६२४ पर वे लिखते हैं कि—

✲✲✲ इसका (चैत्यवास का) प्रारम्भ वीर सवत् ८८२ मे हो गया। यद्यपि उस समय वन के बदले मुनि लोग वसति के चैत्य और उपाश्रये मे उतरते थे, किन्तु वहा वे स्थानपति होकर नहीं रहते थे। चैत्यवसति मे उतरने पर भी वे सतत विहारी होने के कारण विहरूक कहलाते थे। ✲✲✲

मीमासा—इतिहासकार आचार्य ने यहाँ कैसा उटपटाग और अस्पष्ट लिखा है? एव "चैत्य" तथा "चैत्यवसति" शब्द का अर्थ करना तो आचार्य ने टाल ही दिया है। जिन मदिर के शत्रु चैत्य शब्द का अर्थ 'जिन मदिर' क्यो करेंगे?

परम सत्यप्रिय, १४४४ ग्रन्थो के रचयिता पूज्यपाद हरिभद्रसूरिजी महाराज के कथन का उद्धरण करके खड २ पृ० ६२६ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

✡ ✡ ✡ ये साधु चैत्यो और मठो मे रहते हैं। पूजा करने का आरम्भ एव देवद्रव्य का उपभोग करते हैं। ✡ ✡ ✡

मीमासा—मठ शब्द से आचार्य का क्या तात्पर्य है? और चैत्य शब्द का अर्थ यहा भी उन्होने नही किया है। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उस समय भी जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर और जिनपूजन प्रथा थी। और देवद्रव्य भी था इस सत्य तथ्य की ओर आखे मूद लेना अनुचित ही होगा। और यह भूलना नही चाहिए कि उस समय भी पूज्य हरिभद्रसूरिजी, पूज्य अभयदेवसूरिजी आदि सुविहित मुनि विद्यमान थे, जिन्होने चैत्यवास सम्बन्धित शिथिलता का विरोध करते हुए भी जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा आदि शास्त्र कथित प्रवृत्तियो की प्ररूपणा एव पुष्टि की थी और प्रेरणा भी दी थी।

खड २, पृ० ६२८ पर आचार्य लिखते हैं कि—

✡ ✡ ✡ उपलब्ध साहित्य के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विक्रम सवत् १२८५ से "चैत्यवास" सर्वथा बन्द हो गया और मुनियो ने उपाश्रय मे उतरना प्रारम्भ कर दिया। ✡ ✡ ✡

मीमासा—हमारा तो इतना ही कहना है कि जिन सुविहित, आगमज्ञ मुनियो ने चैत्यवास सम्बन्धी शिथिलता को सामने टक्कर लेकर चैत्यवास को समाप्त किया था, उन्होने ही जिनमन्दिर, देवद्रव्य, रक्षण आदि के विषय मे प्रेरणा की थी। यानी जो सिरदर्द था उसे औषधि से मिटाया था, किन्तु सिर को काटने की मूर्खता इन सुविहित मुनियो ने नही की थी, इस सत्य तथ्य से आचार्य हस्तीमलजी अपरिचित नही होगे।

साधव शास्त्र चक्षुष.
साधुओ ज्ञान आँख से देखते हैं।

[प्रकरण–२२]

। । ल ।

आधुनिक युग के उच्छृंखल चिन्तक जो प्राचीन जैनाचार्यों कथित चमत्कारपूर्ण घटनाओ मे विश्वास नही करते हैं, उनके तुष्टि-करण हेतु आचार्य हस्तीमलजी ने पूर्वाचार्यों पर अविश्वास करने वाली साहसिकता का अवलम्बन कर खड २ प्राक्कथन पृ० ३८ पर लिखा है कि—

❂ इसी प्रकार बहुत सी चमत्कारिक रूप से चित्रित घटनाओं को भी इस ग्रन्थ मे समाविष्ठ नहीं किया गया है। मध्ययुगीन अनेक विद्वान ग्रंथकारों ने सिद्धसेन प्रभृति कतिपय प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र का आलेखन करते हुए उनके जीवन की कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाओ का उल्लेख किया है, जिन पर आज के युग के अधिकाश चिन्तक किसी भी दशा मे विश्वास करने को उद्यत नहीं होते। ❂❂❂

मीमासा—पूज्यपाद् सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी के "कल्याण-मन्दिर" नामक स्तोत्र के प्रभाव से शिवलिंग फटा था और उसमे से श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा निकली थी। जिनप्रतिमा की मान्यता का विरोध करने के कारण ही आचार्य हस्तीमलजी ने पूज्यपाद सिद्धसेन-सूरिजी आदि के विषय मे ऐसा लिखा है कि चमत्कारिक घटना इस ग्रन्थ मे नही लिखी गयी है। "चमत्कारिक घटनाओ को इस ग्रन्थ मे समाविष्ट नहीं किया है," ऐसा आचार्य हस्तीमलजी का कथन सर्वथा झूठा

ही है। हाँ! "जिनप्रतिमा" विषयक चमत्कार से स्वमतहानि के कारण ही आचार्य ने प्रस्तुत मे असत्य एव अप्रमाणिकता का सहारा लिया है। अन्यथा स्वय आचार्य ने ही श्री पार्श्वनाथ भगवान के चरित्र मे जीर्णकुमारी, चन्द्रगुप्त-चाणक्य का कथानक, श्रीमानतु गसूरिजी का बेडी टूटना, सुभूम और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की आश्चर्य एव चमत्कार-पूर्ण घटना का अपने इतिहास मे समावेश किया है। इतना ही नही सगर चक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रो की मौत पर पौराणिक किवदन्ती स्वरूप गपोडे को भी यही आचार्य महाशय ने प्रस्तुत किया है। अपि च नदवश की उत्पत्ति के अवसर पर आचार्य ने ही प्रतिज्ञा भग करके चमत्कारिक घटना खड २, पृ० २६८ पर प्रस्तुत की है, यथा—

☼ ☼ ☼ उदायी का राजछत्र भी स्वत ही नन्द के मस्तक पर तन गया और नन्द के दोनो ओर मन्त्राधिष्ठित वे दोनो चामर स्वत ही अदृश्य शक्ति से प्रेरित हो व्यजित होने लगे। ☼ ☼ ☼

एव श्री मानतु गसूरिजी के विषय मे खड—२, पृ० ६४६ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ कमरो के द्वार स्वत ही खुल गये, आचार्य मानतु ग के सभी बधन कट गये। ☼ ☼ ☼

मीमासा—आचार्य हस्तीमलजी द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त घटनाएँ क्या चमत्कारिक नही है? क्या इन पर आचार्य के माने हुए आधुनिक चिंतक विश्वास करेंगे? क्या उपरोक्त बातो से उनकी चमत्कारिक घटना प्रस्तुत नही करने की प्रतिज्ञा का भग नही होता है? जब चमत्कारपूर्ण घटनाएँ आचार्य ने अपने इतिहास मे लिखी ही हैं, तो पूज्य सिद्धसेनसूरिजी सम्बन्धित शिवलिंग फटने की घटना, श्री गौतमस्वामी का यात्रा हेतु अष्टापद गिरि पर जाना, श्री वज्रस्वामी का

जिनपूजा निमित्त आकाशगामिनी विद्या द्वारा पुष्प लाना आदि बातो से ही उनको क्यो नाराजगी है ? जिनप्रतिमा पूजा, जिनमन्दिर और जैनतीर्थों ने आचार्य का क्या बिगाडा है, कि उनके साथ सम्बन्धित घटनाओ को वे चमत्कारिक कहकर नफरत करते हैं ?

एक प्रश्न यह भी है कि आचार्य हस्तीमलजी चिंतक किसको कहते हैं ? आधुनिक जो चिंतक नास्तिक हैं, अश्रद्धावान हैं और मिथ्यात्ववासित हैं, उनको तो कितनी भी सत्य होने पर धर्म सबधी कोई भी बात सुहायेगी ही नही । ऐसे बहुत से आधुनिक चिंतक इतने नास्तिक हैं कि वे धर्म को "नशा" की सज्ञा देते हैं । ऐसे चिंतको की तुष्टि के लिये असत्य का सहारा लेकर, पूर्वाचार्यो के कथनो को धृष्टता पूर्वक अन्यथा कहकर आचार्य हस्तीमलजी सभी जैन शास्त्रो को जी चाहे वैसे पलट डाले, फिर भी प्राचीन जैन शास्त्रो की बात पर उनके माने हुए आधुनिक चिंतको को विश्वास होगा या नही यह प्रश्न ज्यो का त्यो खडा ही रहेगा । फिर तो "लेने गई पूत और खो आयी खसम" वाली कहावत आचार्य द्वारा चरितार्थ हो जायगी ।

जैन धर्म मे भी ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो आगम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि कथित प्रामाणिक सत्य होने पर और ऐतिहासिक प्राचीन शिलालेखो एव ध्वसावशेषो की सामग्री मौजूद होते हुए भी जिनमदिर तथा जिन प्रतिमा आदि के विषय मे श्रद्धा नही करते हैं फिर क्या उनके लिए प्राचीन आगम शास्त्रो को बदल दिया जाय ? अथवा प्राचीन जैन प्रतिमा और मदिर आदि को इन्द्रजाल ही समझा जाय ?

जिसके दिल मे प्राचीन जैनाचार्यों पर श्रद्धा, भक्ति और बहुमान है, वह कभी भी अविश्वास पूर्ण वचन नही बोलेगा कि "पूर्वाचार्यों ने ऐसी चमत्कारिक घटना का उल्लेख कर दिया है, जिस

को मानने के लिये अधिकाश आधुनिक चिंतक किसी भी दशा मे विश्वास नही कर सकते ।" किन्तु आचार्य हस्तीमलजी का उक्त प्रतिपादन नितात गलत और स्वमति कल्पित है क्योकि अखबारो मे प्रसिद्ध होने वाली बहुत सी चमत्कारिक घटनाओ को आज के चिंतक सत्य तथ्य स्वीकार करते हैं ।

हमारा तो यही मानना है कि 'आज के युग के अधिकाश चिंतको" मे आचार्य भी एक हैं, जिन्होने पूर्वाचार्यों के प्रामाणिक कथनो पर अप्रामाणिक आक्षेप करके बगावत की है । आचार्य के पास ऐसा कौनसा यत्र है जिससे वे जान सकें कि चमत्कारपूर्ण घटना पर आज के युग के चिंतक विश्वास नही करते हैं ? आचार्य निज के विषय मे तो ऐसा कह सकते हैं, किन्तु अधिकाश चिंतको के विषय मे ऐसी कल्पना उनके अधिकार के बाहर है । हमारा तो यह कहना है कि पूर्वाचार्यो के विषय मे आचार्य ऐसी सकुचित मान्यता क्यो रखते हैं कि पूर्वाचार्यों ने आगमेतर जैन साहित्य गलत रचा है । आज के विज्ञान के युग मे जैनागमो की बहुत सी बातें जो पहिले विदेशी शिक्षितो मे अविश्वसनीय एव काल्पनिक मानी जाती थी, आज वे प्रामाणिक सिद्ध हुई हैं । जैसे कि पूर्वभव का होना, वनस्पति एकेन्द्रिय जीव है, पानी मे असख्य जीव का होना, आवाज का पौद्गलिक होना, एक भाषा मे बोला गया शब्द अपनी अपनी भाषा मे सुनना आदि अनेक जैनागम कथित बातें विज्ञान द्वारा सिद्ध हो चुकी हैं ।

चमत्कारपूर्ण घटनाएँ आधुनिक चिंतको को अविश्वसनीय लगती हैं इसके कारण उनको अपने इतिहास मे लिखना आचार्य ने अनुचित समझा है । फिर तो जैन धर्म का त्याग-तप-सयमादि की बाते अधिकाश आधुनिक चिंतको को अरुचिपूर्ण और अविश्वसनीय लगती हैं, तो क्या आचार्य जैन धर्म को अविश्वसनीय मानकर त्याग देंगे ?

अस्तु। पूज्य सिद्धसेनसूरिजी आदि की घटना चमत्कार पूर्ण होने के कारण आधुनिक चिंतको को अविश्वसनीय लगे अतः आचार्य ने उनको नही लिखना उचित समझा है, तो क्या निम्नलिखित आगम कथित बातें आधुनिक चिंतको को अविश्वसनीय और अश्रद्धनीय नही लगेंगी ? फिर क्या आचार्य आगम शास्त्रो को भी आधुनिक चिंतको की सतुष्टि के लिये पलटेंगे ? यथा—

(१) तीर्थंकरो का खून सफेद होना।

(२) तीर्थंकर परमात्मा के जन्मादि कल्याणको के अवसर पर देवेन्द्रो का आगमन आदि।

(३) इन्द्रभूति आदि ४४०० ब्राह्मणो की एक ही दिन मे भगवान श्री महावीर स्वामी के पास दीक्षा लेना और इन्द्र द्वारा साधु वेष देना।

(४) श्री ऋषभदेव भगवान का ४०० दिन का निर्जल उपवास।

(५) वेश्या के घर रहे हुए नदीषेण द्वारा हर दिन १० को प्रतिबोधित करके दीक्षा दिलवाना।

(६) चेटक और कूणिक के बीच रथमूसल युद्ध मे एक ही दिन मे ९६ लाख सैनिको का सहार होना।

(७) सद्योजात बालक महावीर के चरण-स्पर्श मात्र से मेरु पर्वत का कपायमान होना।

(८) मध्यलोक मे असख्य द्वीप और समुद्र का होना।

(९) महाविदेह क्षेत्र मे श्री सीमधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकरो का होना।

(१०) सूर्य, चन्द्र, मगल आदि ज्योतिष देवो के विमानो का अस्तित्व, जहाँ रोकेट आदि द्वारा मनुष्य अब भी नही पहुँच पाया है।

(११) जह्नु आदि ६० हजार सगरपुत्रो की तीर्थरक्षा मे एक साथ मृत्यु।

(१२) एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के सम्मूर्च्छिम (माता-पिता के सयोग के बिना जन्मे हुए) जीव।

(१३) इस अवसर्पिणी काल के दश आश्चर्य।

(१४) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय का अस्तित्व।

(१५) स्वर्ग और नरक आदि का होना।

(१६) ओस के जीवो की रक्षा हेतु कालवेला मे सुविहित मुनियो द्वारा कम्बल का उपयोग करना।

(१७) रजस्वला स्त्री की अपवित्रता और उसके लिये स्वाध्याय निषेध।

(१८) सगम का कालचक्र आदि देवकृत भयकर उपसर्ग होने पर भी भगवान महावीर की मृत्यु का न होना।

(१९) विद्युत्-बिजली आदि अग्निकाय एकेन्द्रिय जीव है।

(२०) वायु एकेन्द्रिय जीव है।

(२१) आलू, मूली, गाजर आदि जमीकन्दो मे अनन्त जीव का होना और दयाधर्मी को वे नही खाना चाहिए ऐसी श्रद्धा और विश्वास सपादन करना।

(२२) बासी और द्विदल भक्षण मे त्रसकाय जीवो की महा हिंसा का होना।

(२३) थूक आदि मे सम्मूर्च्छिम जीवो की उत्पत्ति होना।

(२४) रात्रि भोजन नरक का द्वार है।

(२५) जीव, ससार और कर्म अनादि हैं।

(२६) नमक, पत्थर, सोना, चादी आदि पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय जीव हैं।

ऐसी तो सैकडो बातें हैं, जिनकी प्रामाणिकता और सत्यता को सिद्ध करने के लिये हमारे पास आगमो और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य को छोडकर आधार ही क्या है? आप्तपुरुष तीर्थंकरो एव पूर्वाचार्यों के वचनो पर श्रद्धा और विश्वास के अभाव मे आप्तपुरुष कथित इन बातो पर अश्रद्धा और अविश्वास बना रहे तो इसमे क्या आश्चर्य है?

गुरुगम और समुचित अभ्यास के अभाव मे ज्योतिष आदि शास्त्र अज्ञानी को व्यर्थ या झूठ लगे, ऐसे ही गुरुगम और समुचित स्याद्वाद परिणतमति के अभाव मे आचार्य हस्तीमलजी को पचमहाव्रती पूर्वाचार्यों कथित बातें चमत्कारिक एव कल्पित लगे तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

आज के युग के कथित कतिपय नास्तिक चितको की सतुष्टि हेतु आचार्य ने जैन साहित्य को बदलने और छिपाने की जो सुधारवादी प्रवृत्ति की है, इससे जैन समाज को सावधान एव सतर्क रहने की अत्यत आवश्यकता है।

स्वय सुधारवादी वृत्तिवाले आचार्य दूसरो को आत्मवचक हितशिक्षा खड—२, पृष्ठ २६ पर देते हैं कि—

❋ ❋ ❋ यदि प्रत्येक जिनशासनानुयायी मे इस प्रकार की जागरूकता उत्पन्न हो जाए तो आज जैनागमो के सम्बन्ध मे तथाकथित सुधारवादियो द्वारा जो विषैला प्रचार किया जा रहा है, उसके कुप्रभाव और कुप्रवाह को रोका जा सकता है। ❋ ❋

मीमासा—हमारा भी यही कहना है कि आचार्य हस्तीमलजी के प्राचीन जैन साहित्य विषयक सुधारवादी विषैले दृष्टिकोण से जैन समाज को जागरूक रहना चाहिए।

जैन शास्त्र मे सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट को भ्रष्ट कहा है।

[प्रकरण-२३]

ि ा ौ ौ स ा ी

प्रात स्मरणीय, विनयवन्त, लब्धिनिधान प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी महाराज १४ विद्या के पारगत थे। भगवान श्री महावीर देव के तीन ही पद [उपनेईवा, विगमेईवा, घूवेईवा] पाकर जिनके हृदय मे द्वादशागी का प्रकाश हुआ था। वे इतने विनयवन्त थे कि दीक्षा दिन से ही अह का त्याग कर भगवान के सामने अजलिबद्ध बैठकर भगवान की वाणी को निधान से भी अधिक मूल्यवाली समझते हुए सुनते थे। उनकी सरलता इतनी थी कि भूल मालूम होने पर चौदह-पूर्वधारी उन्होने आनन्द श्रावक से क्षमायाचना की थी। ऐसे पवित्र चारित्रधर श्री गौतमस्वामी श्री महावीर स्वामी के वचन पर अपनी चरम भविता के निर्णय तथा यात्रा हेतु स्वलब्धि बल से सूर्य की किरणो का सहारा लेकर श्री अष्टापदजी तीर्थ पर गये थे, जहा श्री ऋषभदेव भगवान की निर्वाण भूमि पर प्रथम चक्रवर्ती भरत राजा ने मदिर बनवाया था। तीर्थयात्रा काल मे ही उन्होने श्री वज्रस्वामी जो पूर्वभव मे तिर्यग् जृभग देव था, उनको प्रतिबोध किया था और अष्टापद तीर्थ की यात्रा हेतु लब्धि प्राप्ति के लिये तप करते हुए १५०० तापस-सन्यासियो को चारित्र-दीक्षा देकर, अक्षीण महानस लब्धि के बल से अगूठे मे से अमृत तुल्य खीर बहाकर पारणा करवाया था, अत आज भी लोग श्री गौतमस्वामी के विषय मे कहते हैं कि अगूठे अमृत बसे। वे

१५०० तापस गुरु श्री गौतम स्वामी की कृपा से केवलज्ञानी बने थे। श्री गौतम स्वामी ने जिनको भी दीक्षा दी है, उन्होने केवलज्ञान प्राप्त किया है, अत आज भी "गौतम सरिखा गुरु नही" ऐसा जैन जन जन के दिल मे गू जता है।

खड २, पृ० ३२ से ३९ तक मे पूज्य श्री गौतमस्वामी के विषय मे आचार्य हस्तीमलजी ने बहुत कुछ लिखा है, किन्तु श्री गौतमस्वामी का स्वलब्धि बल से श्री अष्टापद गिरि पर तीर्थयात्रा हेतु जाना, अष्टापदगिरि के सोपान पर लब्धिप्राप्ति हेतु तप करते हुए १५०० तापसो को खीर का पारणा करवाना आदि तथ्यो को छिपा के उन्होने प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी के चरित्र के साथ सरासर अन्याय किया है। पृ० ३६ पर आचार्य लिखते हैं कि—

✱✱✱ वे सर्वाक्षर सन्निपात जैसी विविध लब्धियो के धारक थे। ✱✱✱

पृ० ३९ पर लिखते हैं कि—

✱✱✱ प्रतिदिन लाखो जन आज भी प्रभात की मगल वेला मे भक्ति पूर्वक भाव विभोर हो बोलते हैं,

अगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भडार।
श्री गुरु गौतम समरिये, वाछित फल दातार॥ ✱✱✱

मीमासा—श्री गौतमस्वामी ने अगूठे मे से अमृत कहाँ और क्यो बहाया? लब्धि का उपयोग कहाँ और क्यो किया? वे वाछित फल के दातार किस कारण कहे जाते हैं? इन तथ्यो को आचार्य ने अपने इतिहास मे क्यो छिपाया है? क्या एक इतिहासकार को ऐसी वचना शोभनीय है?

तथ्य यह है कि अक्षीण महानस लब्धि से श्री अष्टापदगिरि के सोपान पर तप करते १५०० तापसो को खीर के पात्र मे अगूठा रखकर चाहे जितनी खीर बहाकर श्री गौतम स्वामी ने पारणा करवाया था, इसलिये उनके विषय मे कहा जाता है कि—

"अगूठे अमृत बसे ।"

तथा स्वविद्या-लब्धि बल से सूर्य की किरणो को पकडकर वे अष्टापदजी तीर्थ पर यात्रा करने गये थे, अत उन्हे "लब्धि तणा भण्डार" कहते हैं और उन्होने जिनको भी दीक्षा दी थी, उनको केवलज्ञान रूप अक्षयलक्ष्मी की प्राप्ति हुई है अत उनको वाछित फल दातार कहते हैं। इन्ही कारणो से आज भी श्री गौतम स्वामी का नाम जैन जन-जन के हृदयो में अकित है।

आचार्य हस्तीमलजी ने श्री गौतमस्वामी को विविध लब्धियो का धारक बताया है, किन्तु श्री गौतम स्वामी ने लब्धियो का उपयोग कब और कहाँ किया था ? प्रतिदिन लाखो जन उनको लब्धि का निधान कहकर क्यो याद करते है ? वे अगूठे से अमृत बहाने वाले क्यो कहे जाते हैं ? आदि अनेक प्रश्नो को मदिर और मूर्ति विरोधी स्वमान्यता के कारण आचार्य ने जो छिपाने की कुचेष्टा की है वह विचारणीय है। आचार्य पद धारक होते हुए एक व्यक्ति जिनप्रतिमा, जिनमदिर एव तीर्थों आदि के विषय मे तथ्यो को छिपाये या पक्षपात-पूर्ण वर्तन करे, यह क्या न्यायपूर्ण है ? ऐसी दशा मे "सपादकीय नोंध" पृ० ३० (पुरानी आवृत्ति) पर मुख्य सपादक श्री गजसिहजी राठौड (न्यायतीर्थ) का लिखना सरासर झूँठ और असगत एव आत्मवचक है कि —

✵✵✵ इतिहास-लेखन जैसे कार्य के लिये गहन अध्ययन, क्षीर नीर विवेकमयी तीव्र बुद्धि, उत्कट कोटि की स्मरण शक्ति, उत्कट साहस,

अथाह ज्ञान, अडिग अध्यवसाय, "पूर्ण निष्पक्षता" (?) घोर परिश्रम आदि अत्युच्चकोटि के गुणो की आवश्यकता रहती है। वे सभी गुण आचार्यश्री (हस्तीमलजी) मे विद्यमान हैं। ❋ ❋ ❋.

मीमासा—श्री गजसिंहजी को प्रशसा एव खुशामद नितात असत्य ठहरती है, क्योंकि आचार्य मे निष्पक्षता आदि का सर्वथा अभाव ही पाया जाता है, जो बात हम पूर्व मे दिखा चुके हैं।

इतिहास विषयक तथ्य सत्य को छिपाने के बावजूद भी आचार्य पदारूढ और सत्यव्रत के धारक कहे जाने वाले आचार्य का छलकपट देखो कि वे खड २, पृ० ३९ पर 'प्राक् कथन' मे लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ हमारी चेष्टा पक्षपात विहीन एव केवल यह रही है कि वस्तु स्थिति प्रकाश मे लायी जाय। ❋ ❋ ❋

मीमासा—"वस्तुस्थिति प्रकाश मे लायी जाय"—ऐसा प्रतिज्ञापूर्वक कहने वाले आचार्य को उनकी कथनी और करनी बीच कितना बडा अन्तर है यह विचारना चाहिए।

इतिहासकार को तटस्थ और प्रामाणिक होना चाहिए जिसका स्थानकपथी आचार्य हस्तीमलजी मे नितात अभाव ही पाया गया है, जो अत्यन्त खेद की बात है। सच्चा इतिहासकार तथ्य को कभी भी नही छिपाता है, चाहे वह स्वय उसे माने या न मानें यह एक

अलग बात है किन्तु इतिहासकार के जरिये जो कुछ ऐतिहासिक सामग्री जिसके भी विषय मे उपलब्ध हो उन सबको प्रस्तुत कर देना उसका पवित्र कर्तव्य है।

— लोकोत्तर चार महापाप :—

(१) साधु महाराज का खून करना (२) साध्वीजी के शील का खडन करना (३) देवद्रव्य का भक्षण करना [बोली बोलकर पैसा न देना] (४) जिनमदिर और मदिर की प्रतिमा को तोडना [भद्रिक जीवो की मदिर विषयक भावना को तोडना या मदिर मैं नही जाना ऐसी प्रतिज्ञा देना]

अथाह ज्ञान, अडिग अध्यवसाय, "पूर्ण निष्पक्षता" (?) घोर परिश्रम आदि अत्युच्यकोटि के गुणो की आवश्यकता रहती है। वे सभी गुण आचार्यश्री (हस्तीमलजी) मे विद्यमान हैं। ❋ ❋ ❋.

मीमासा—श्री गजसिंहजी को प्रशसा एव खुशामद नितात असत्य ठहरती है, क्योंकि आचार्य मे निष्पक्षता आदि का सर्वथा अभाव ही पाया जाता है, जो बात हम पूर्व मे दिखा चुके हैं।

इतिहास विषयक तथ्य सत्य को छिपाने के बावजूद भी आचार्य पदारूढ और सत्यव्रत के धारक कहे जाने वाले आचार्य का छलकपट देखो कि वे खड २, पृ० ३९ पर 'प्राक् कथन' मे लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ हमारी चेष्टा पक्षपात विहीन एव केवल यह रही है कि वस्तु स्थिति प्रकाश मे लायी जाय। ❋ ❋ ❋

मीमासा—"वस्तुस्थिति प्रकाश मे लायी जाय"—ऐसा प्रतिज्ञापूर्वक कहने वाले आचार्य को उनकी कथनी और करनी बीच कितना बडा अन्तर है यह विचारना चाहिए।

इतिहासकार को तटस्थ और प्रामाणिक होना चाहिए जिसका स्थानकपथी आचार्य हस्तीमलजी मे नितात अभाव ही पाया गया है, जो अत्यन्त खेद की बात है। सच्चा इतिहासकार तथ्य को कभी भी नही छिपाता है, चाहे वह स्वय उसे माने या न मानें यह एव

आचार्य को अपनी करनी और कथनी जाचनी चाहिए और अगर उनकी उक्त करनी हिंसामूलक है तो उन्हे इनका त्याग करना चाहिए ।

हिंसा और अहिंसा के विषय मे जैन सिद्धान्त स्याद्वाद के समुचित ज्ञान के अभाव के कारण ही आचार्य ने खड २, पृ० १५६ पर लिखा है कि—

❂ ❂ ❂ जो लोग चैत्य, मदिर, मठ और यज्ञ-यागादि धर्मकार्यों मे होने वाली हिंसा को नहीं मानते उन्हें प्रश्न व्याकरण के इस अध्ययन को देखना चाहिए ।

इसमे अर्थ और काम निमित्त की जाने वाली हिंसा की तरह धर्म-हेतु की जाने वाली हिंसा को भी अधर्म बताया है । ❂ ❂ ❂

मीमासा—'प्रश्न व्याकरण' आगम के नाम से मदिर और मठ के साथ यज्ञ-यागादि की हिंसा को जोडना आचार्य का अप्रमाणिक कृत्य है । आचार्य ने अगर जैनागमो और आगमेतर जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि को अच्छी तरह देखा होता तो मदिर के साथ यज्ञ-यागादि की हिंसा को जोडने का दुस्साहस नही करते । सपूर्ण जैन साहित्य मे कही भी यज्ञ-यागादि क्रिया को सराहा नही है । इतना ही नही शास्त्रो मे उनको सर्वथा अनुचित मानते हुए उनकी कडी आलोचना एव भर्त्सना की गयी है ।

"चैत्य" शब्द के अर्थ को आचार्य हस्तीमलजी ने अस्पष्ट रखा है । यानी 'चैत्य' शब्द से उनका मतलब क्या साधु से, या ज्ञान से, या कामदेव की प्रतिमा से, या अन्य किसी अर्थ से है ?

"मठ" शब्द से आचार्य का तात्पर्य अगर स्थानक या उपाश्रय से है, तब तो 'घटकुट्या न्याय' चरितार्थ हो गया । वे स्वय

[प्रकरण–२४]

[illegible] में [illegible]

वैसे देखा जाए तो सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रवचन देना, गोचरी हेतु जाना आदि सभी शुभ धर्म क्रियाओ मे स्थावर-काय की सूक्ष्म हिंसा होती ही नही है ऐसा दृढता पूर्वक कहना मुश्किल है।

श्रावक सम्मेलन करवाना, प्रदर्शन हेतु भक्तजनो को सैकडो मील की दूरी से वदन के बहाने बुलाना, उनके भोजनादि की सुविधा के लिये अन्य भक्तो को प्रेरित करना, कबूतरो को चुग्गा डालने की प्रेरणा करना, स्थानक बनवाने की प्रेरणा देना, किताब छपवाना, गोठ-प्रीतिभोज करवाना, इतिहासादि मुद्रित करवाने हेतु वैतनिक पडित को सावद्य आदेश पूर्वक इधर-उधर भेजना, निज की तस्वीर छपवाने-बँटवाने मे भक्तगणो को मूक सम्मति देना, नारियल आदि की प्रभावना करवाना, दया पलवाने पर कच्चा पानी पीना-पिलाना, थोडीसी राख डलवा के पानी को अचित्त (!) बनवाना आदि अनेक सावद्य यानी पापपूर्ण कार्यों को अहिंसा धर्म के प्रेमी माने जाने वाले और "प्रश्न व्याकरण" नामक आगम शास्त्र के नाम से दूसरो को अहिंसा विषयक कोरा उपदेश देने वाले आचार्य हस्तीमलजी उक्त सावद्य कार्य क्यो करते एव करवाते हैं? यह आश्चर्यपूर्ण है। "आरभे नत्थि दया" अर्थात् "हिंसा रूप आरम्भ मे दया नही है", ऐसा एकान्त से कहने वा

आचार्य को अपनी करनी और कथनी जाचनी चाहिए और अगर उनकी उक्त करनी हिंसामूलक है तो उन्हे इनका त्याग करना चाहिए ।

हिंसा और अहिंसा के विषय मे जैन सिद्धान्त स्याद्वाद के समुचित ज्ञान के अभाव के कारण ही आचार्य ने खड २, पृ० १५६ पर लिखा है कि—

☼ ☼ ☼ जो लोग चैत्य, मंदिर, मठ और यज्ञ-यागादि धर्मकार्यों मे होने वाली हिंसा को नहीं मानते उन्हें प्रश्न व्याकरण के इस अध्ययन को देखना चाहिए ।

इसमे अर्थ और काम निमित्त की जाने वाली हिंसा की तरह धर्म-हेतु की जाने वाली हिंसा को भी अधर्म बताया है । ☼ ☼ ☼

मीमासा—'प्रश्न व्याकरण' आगम के नाम से मदिर और मठ के साथ यज्ञ-यागादि की हिंसा को जोडना आचार्य का अप्रमाणिक कृत्य है । आचार्य ने अगर जैनागमो और आगमेतर जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि को अच्छी तरह देखा होता तो मदिर के साथ यज्ञ-यागादि की हिंसा को जोडने का दुस्साहस नही करते । सपूर्ण जैन साहित्य मे कही भी यज्ञ-यागादि क्रिया को सराहा नही है । इतना ही नही शास्त्रो मे उनको सर्वथा अनुचित मानते हुए उनकी कडी आलोचना एव भर्त्सना की गयी है ।

"चैत्य" शब्द के अर्थ को आचार्य हस्तीमलजी ने अस्पष्ट रखा है । यानी 'चैत्य' शब्द से उनका मतलब क्या साधु से, या ज्ञान से, या कामदेव की प्रतिमा से, या अन्य किसी अर्थ से है ?

"मठ" शब्द से आचार्य का तात्पर्य अगर स्थानक या उपाश्रय से है, तब तो 'घटकुट्या न्याय' चरितार्थ हो गया । वे स्वय

मठ-स्थानक-उपाश्रयादि बनवाने की प्रेरणा करते हैं और स्थानक बनवाने वालो की प्रशसा-सराहना-अनुमोदना भी करते हैं। अतः "प्रश्न व्याकरण" कथित अहिंसा विषयक बाघ पाकर स्वय आचार्य को ऐसा प्रतिपादन करना चाहिए कि मठ-स्थानक-उपाश्रय बधवाना अधर्म है यानी पाप है ताकि उनके भक्त स्थानक बनवाने की हिंसामय पाप प्रवृत्ति से बच सकें।

जिनमन्दिर तथा जिनपूजा में हिंसा होने से पूजादि को पाप रूप कहने वाले आचार्य को सार्धमिक भक्ति, प्रीतिभोज, श्रावक सम्मेलन, जीवानुकम्पा, पुस्तक छपवाना, भक्तो को मीलो की दूरी से बुलवाना, स्थानक बनवाना आदि कार्य भी पाप रूप होने के कारण, इन्हे त्यागना चाहिए। 'प्रश्न व्याकरण" के उपदेश से स्वय आचार्य ही क्यो विपरित चल रहे हैं ?

आगे पीछे के सदर्भ एव तात्पर्य को छोड़कर ऐकान्तिक रीत से "प्रश्न व्याकरण आगम" के नाम से मदिर एव जिन प्रतिमादि सत्कार्यों को कोसने की आचार्य की प्रवृत्ति उनमे स्याद्वाद परिणत मति का अभाव ही प्रगट करती है। एकान्ते शरण्य, विश्ववद्य तीर्थंकर परमात्माओ की उपस्थिति मे भी पुष्पवृष्टि, चँवर ढुलाना, सुगधित जल का छिडकना, देवदु दुभि बजना आदि होता था, अहिंसा धर्मियो को यह भूलना नही चाहिए कि इसमे वायुकायादि की हिंसा होती होगी फिर भी इन प्रवृत्तियो का काम-भोग की तरह भगवान ने निषेध नही किया है, एव श्रेणिक आदि राजा महाराजाओ का चतुरगी सेना और सर्व ऋद्धि-ठाठ से प्रभुवदना के लिये जाने मे भी हिंसा तो होती ही है, फिर भी ऋद्धि-ठाठ पूर्वक वन्दन हेतु आने को भगवान- ने निषेध नहीं किया है।

स्याद्वाद पूत दृष्टिवाले को जानना चाहिए कि यहा भगवान को द्रव्यस्तव जनित शुभभाव ही अनुमोदनीय है, न कि तद्‌विषयक हिंसा। जैसे सार्धमिक भक्ति के पीछे एव दया पलवाने के पीछे साधु को सार्धमिक भक्ति या जीवदया अभिप्रेत-अनुमोदनीय है, न कि चौका विषयक हिंसा तथा जैसे उपाश्रय बनवाने की प्रेरणा के पीछे साधु को धर्म की आराधना अभिप्रेत है, न कि तद्‌विषयक हिंसा, वैसे ही गृहस्थो द्वारा होती पुष्प आदि से भगवान की पूजा मे साधु को द्रव्यपूजा द्वारा शुभ भाववृद्धि अनुमोदनीय है, न कि पुष्पादि विषयक हिंसा, यह भूलना नही चाहिए। इसी प्रकार द्रव्यस्तव की अनुमोदना के पीछे भी गर्भित रीति से प्राप्त भगवान को द्रव्यपूजा से जनित शुभभाव की अनुमोदना ही अभिप्रेत है, न कि आरम्भ की अनुमोदना।

ऐसे ही भगवान को द्रव्यस्तव अनुमोदनीय और अभिप्रेत है, क्योकि समवसरण मे राजा एव अमात्यो द्वारा होता बलिउपहार एव भरत चक्रवर्ती आदि द्वारा निर्मित जिनमदिर और मूर्तिपूजा के विषय मे भगवान ने कभी भी निषेध नही किया है और न अनुचित भी कहा है। इस विषय को लघुहरिभद्र न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय महाराज अपने "उपदेश रहस्य" नामक ग्रथ मे अनुमान प्रमाण से भी इस प्रकार सिद्ध करते हैं। यथा—

✲ ✲ ✲ द्रव्यस्तवो भगवदनुमतिविषय योग्यप्रज्ञाप्ये भगवद-निवारितत्वात्, यन्नैव तन्नैव यथा कामादय, यदि च भगवानेन नाम्नमोदयिष्य-त्तदा निराकरिष्यत्, अन्यथा योग्ये निषेध्यम् अनिषेध्योपदेशान्तरदाने तदनुमति-प्रसगात्। ✲ ✲ ✲

अर्थात्—द्रव्यपूजा भी भगवान को अभिप्रेत [मान्य-इष्ट-अनुमति का विषय] है। अगर भगवान को द्रव्यपूजा (द्रव्यस्तव) अनिष्ट-असहमत होता तो वे काम-भोग की तरह इसका भी इन्द्रादि

देवो और श्रेणिकादि भक्तो को निषेध अवश्य करते। यद्यपि भगवान जमालि जैसे अयोग्य और अप्रज्ञापनीय [जडबुद्धिवाला] को निषेध्य का निषध नही करते, किन्तु इन्द्रादि देवो और अभयकुमार, श्रेणिकादि जैसे योग्य और प्रज्ञापनीय [सुखबोध्य] के सामने निषेध्य का निषेध नही करके अन्य विषय मे उपदेश देने लगते, तो भगवान की निषेध्य मे भी अनुमति है ऐसा सिद्ध हो जाता।

भगवान आप्त है यानी वे योग्य और सुख बोध्य को अहित से निवर्तन और हित मे प्रवर्तन करवाते है। भगवान ने देवो द्वारा होती पुष्पवृष्टि, चँवर ढुलाना और बलि उपहार आदि का निषेध नही किया है, इससे द्रव्यपूजा के विषय मे भगवान की अनुमति स्पष्ट सिद्ध होतो है। ऐसा ही श्रेणिक आदि का चतुरगी सेना के साथ जाना एव सूर्याभदेव तथा जीर्णकुमारिओ के नाटक के विषय मे भी जानना चाहिये।

आगम शास्त्रो एव आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि कथित और पूर्वाचार्यो विहित (निरूपित) तथा हजारो सालो के प्राचीन शिलालेख, जिनमूर्तियो पर लिखे लेखो से मूर्ति और मूर्ति की मान्यता सिद्ध होते हुए भी जिनमूर्तिपूजा मे हिंसा हिंसा की पुकार करने वालो की दयाधर्मिता आलू, मूली, गाजर आदि अनन्त-काय भक्षण करते वक्त एव बासी तथा द्विदल खाते समय कहाँ चली जाती है, यह समझ मे नही आता।

विहार के समय नदी उतरना, बर्तन खोलकर अतिउष्ण पेय चाय आदि ग्रहण करना, वर्षा बरसते समय भी प्रवचन रखना, नारियल की प्रभावना करना, इत्यादि हिंसा को दयाधर्मी आ-
मान्यता देते हैं? इन सब स्थानो पर प्रश्न व्याकरण के
"धर्महेतु की जाने वाली हिंसा भी अधर्म है" को आचार्य ५५

है ? मेरठ मे स्थानकपंथी साधु के स्मारक स्वरूप एक कीर्ति स्तम्भ बना है, उसके चारो तरफ बाग, बगीचे, नीचे हरि दूब तथा बिजली आदि जगमगाते हैं ? मंदिर की आलोचना करने वाले और मंदिर मे नही जाने की प्रतिज्ञा कराने वाले आचार्य ने उक्त कार्यो का क्या कभी विरोध किया है ? या उस स्थान पर दर्शनार्थ नही जाने की प्रतिज्ञा अपने भक्तो को दी है ?

स्याद्वादहष्टि से हम तो इतना ही कहेगे कि भगवान की आज्ञा मे ही धर्म है। पूज्य कालिकाचार्य ने लडाई तक लडवाई है, इस पर भी वे महान अहिंसक कहे जाते हैं। मूढ लोग भले दया पलवाई उसको अहिंसा माने, किन्तु पानी मे थोडी सी राख डालकर कच्चा पानी पिलाने के कारण बाहरी कल्पित अहिंसा भी भीतर से महाहिंसा है, इतना ही नही किन्तु ऐसी कुप्रवृत्ति मिथ्यात्व को बढावा भी देती है।

आगमेतर जैन शास्त्रो मे सबसे प्राचीन, श्री महावीर स्वामी के द्वारा दीक्षित पूज्य धर्मदास गणि महाराज द्वारा विरचित "उपदेश-माला" शास्त्र मे कहा है कि—

✱✱✱ तम्हा सव्वणुन्ना, सव्वनिसेहो य पवयणे नत्थि।

आय वय तुलिज्जा, लाहाकंखिव्व वाणिओ ॥श्लोक ३९२॥

भावार्थ—जिनाज्ञा उत्सर्ग और अपवाद रूप मे है। जैनागमो मे त्याज्य रूप से जिसका निषेध किया गया है, उसका भी अपवाद मार्ग से विधान बताया गया है। यानी जैन प्रवचन मे सर्वनिषेध कही भी नही है। अत लाभाकांक्षी बनिये की तरह लाभालाभ विचार करके ही प्रवृत्ति करनी चाहिए।

जिनमदिर, जिनप्रतिमादि के विषय मे आचार्य को अनेकान्तवाद का आश्रय लेना चाहिए, क्योकि शास्त्रो मे स्याद्वाद-परिकर्मित शुद्ध श्रद्धा और परिणति के बिना व्यक्ति को द्रव्यचारित्री ही कहा है।
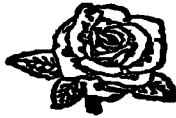
स्थावर हिंसा जिनपूजा मे, यह देख तू धूजे।
तो पापी वह दूर देश से, जो तुझे आकर पूजे ।।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी
उपाध्याय महाराज

[प्रकरण–२५]

श्री ा ामी ौर रं ो

भगवान श्री महावीर स्वामी की पाट परम्परा मे आर्य श्री प्रभव स्वामी के पश्चात् पूज्य यशोभद्रसूरिजी आये। आपके शिष्य आर्य श्री भद्रबाहु स्वामी १४ पूर्वधर थे। आपका जीवन वृत्तान्त इस प्रकार है।

आर्य श्री यशोभद्रसूरिजी के पास ब्राह्मण ज्ञातीय भद्रबाहु और वराहमिहिर नाम के दो भाईयो ने दीक्षा ली। श्री भद्रबाहुस्वामी विनयवन्त और तेजस्वी थे, गुरुकृपा से आप चौदहपूर्व के धारक बनें और आपको योग्य जानकर गुरु ने आचार्य पदारूढ किया। आचार्य-पदेच्छु वराहमिहिर को अयोग्य जानकर गुरु ने आचार्य पद नही दिया। अत. वह फिर से ब्राह्मण वेश धारणकर नैमित्तिक बन गया।

एक बार राजा के घर पुत्र का जन्म हुआ, तब वराहमिहिर ने बालक की आयु १०० साल बताई, किन्तु आर्य श्री भद्रबाहुस्वामी ने बताया कि उसकी सातवें दिन बिडाल से मौत होगी। बालक की सुरक्षा के निमित्त राजा ने सब विडाल बिल्ली को नगर के बाहर निकाल दिया। फिर भी सातवें दिन बालक की मृत्यु कपाट की अर्गला पर उत्कीर्ण बिडाल की आकृति वाली अर्गला से हो गयी। राजा को ज्ञात हुआ कि पूज्य भद्रबाहुस्वामी का ज्ञान सत्य से परिपूर्ण है। लोगो मे वराहमिहिर की बडी हांसी हुई, वह अज्ञानकष्ट से मरकर देव हुआ

और लोगो पर उपसर्ग करने लगा। इससे बचने हेतु पूज्य भद्रबाहुस्वामी ने "उवसग्गहर स्तोत्र" की रचना की, जिसके जाप-ध्यान से सब उपद्रव रहित हुआ।

आचार्य हस्तीमलजी खड २, पृ० ३३१ पर लिखते हैं कि—

※※※ धात्री से बालक की मृत्यु का कारण पूछा गया तो उसने रोते हुए उस अर्गला को उठाकर महाराज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। अर्गला के मुख पर उत्कीर्ण की हुई बिडाल की आकृति को देखकर राजा ने आश्चर्याभिभूत होकर बारम्बार आचार्य भद्रबाहु की महिमा की ।※※※

मीमासा—यहाँ प्रश्न यह है कि बालक की मृत्यु बिडाल से हुई या लोहे की अर्गला से ? यद्यपि बालक की मृत्यु लोहे की अर्गला से हुई है, फिर भी अगाध ज्ञानी १४ पूर्वधर महर्षि श्री भद्रबाहुस्वामी ने बालक की मृत्यु का कारण बिडाल क्यो बताया ? इतने ज्ञानी को तो यह कहना चाहिए कि बालक की मृत्यु—"लोहे की अर्गला गिरने से होगी"। क्योकि बिडाल की निर्जीव आकृति से किसी की मौत नही हो सकती। यहाँ १४ पूर्वधर को बिडाल की मूर्ति मे भी मूर्तिमान अभिप्रेत है, किन्तु इसप्रकार की सूक्ष्म बात की समझ बिना गुरुगम के कारण स्थानकपथी को कभी नही आयेगी, कि—"१४ पूर्वधर ने भी बालक की मौत का कारण बिडाल से कहा था, जोकि लोहे के कपाट पर उत्कीर्ण निर्जीव बिडाल की आकृति मात्र थी।"

स्पष्ट तथ्य यह है कि केवलज्ञानी तुल्य देशना देने वाले चौदह पूर्वधर श्रीमद् भद्रबाहु स्वामी ने बिडाल की आकृति को भी बिडाल कहा है। इसी दृष्टात से आचार्य को भी जानना चाहिए कि जिनेश्वर देव की प्रतिमा भी जिनेश्वर देव के समान कही जाती है।

यद्यपि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो जैन समाज की यह श्रद्धा है कि—

"जिन प्रतिमा जिन सारिखो" । यानी जिनेश्वर देव की प्रतिमा जिनेश्वर देव के समान ही है। बहुधा स्थानकपथी लोग श्वेताम्बरो को पत्थर पूजक कहते हैं या भगवान की मूर्ति को पत्थर कहते हैं तो यह उनकी अल्पज्ञता ही है, क्योकि मूर्ति की पूजा इसलिए नही की जाती है कि वह सोने, चादी या सगमरमर की है, किन्तु वह तीर्थंकर परमात्मा की है इसलिए पूजा की जाती है। वास्तविकता यह है कि जिसका भावनिक्षेप वदनीय-पूजनीय है, उसका नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीनो निक्षेप भी वदनीय-पूजनीय हैं। मूर्ति मूर्तिमान का स्मारक है। मूर्ति द्वारा मूर्तिमान की पूजा की जाती है। सिर्फ नाम स्मरण करने वाले भी अगर नाम स्मरण की गहराई मे उतरें तो जड नाम के स्मरण के पीछे भी यही आशय समाया हुआ है। यद्यपि तीर्थंकर परमात्मा के सिर्फ नाम स्मरण के पक्षधर एव हिमायती स्थानकपथी मुनि आदि अपनी तस्वीर बडे चाव से खिचवाते, बँटवाते देखे गये हैं, यहाँ भी मूर्ति के पीछे मूर्तिमान के स्मरण का भाव ही होगा या अन्य ? इसका जवाब आचार्य स्वय क्या देंगे ?

जसे पिता वन्दनीय है, तो उनका चित्र-प्रतिमा भी वदनीय-पूजनीय है। इसी तरह नमस्कार महामत्र वदनीय है, वैसे उनकी तस्वीर भी वदनीय ही है। क्या स्थानकमार्गी नमस्कार महामत्र की तस्वीर को थूक अथवा पैर लगाकर आशातना करेंगे ?

न्यायविशारद महाज्ञानी पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय महाराज प्रभु के स्तवन मे लिखते हैं कि—

ये जिन प्रतिमा जिनवर सरिखी, पूजो त्रिविधे तुमे प्राणी।
जिन प्रतिमा मे सदेह न रक्खो, वाचक यश की वाणी ।।

और लोगो पर उपसर्ग करने लगा । इससे बचने हेतु पूज्य भद्रबाहुस्वामी ने "उवसग्गहर स्तोत्र" की रचना की, जिसके जाप-ध्यान से संघ उपद्रव रहित हुआ ।

आचार्य हस्तीमलजी खड २, पृ० ३३१ पर लिखते हैं कि—

☼☼☼ धात्री से बालक की मृत्यु का कारण पूछा गया तो उसने रोते हुए उस अर्गला को उठाकर महाराज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया । अर्गला के मुख पर उत्कीर्ण की हुई बिडाल की आकृति को देखकर राजा ने आश्चर्याभिभूत होकर बारम्बार आचार्य भद्रबाहु की महिमा की । ☼☼☼

मीमासा—यहाँ प्रश्न यह है कि बालक की मृत्यु बिडाल से हुई या लोहे की अर्गला से ? यद्यपि बालक की मृत्यु लोहे की अर्गला से हुई है, फिर भी अगाध ज्ञानी १४ पूर्वधर महर्षि श्री भद्रबाहुस्वामी ने बालक की मृत्यु का कारण बिडाल क्यो बताया ? इतने ज्ञानी को तो यह कहना चाहिए कि बालक की मृत्यु—"लोहे की अर्गला गिरने से होगी" । क्योकि बिडाल की निर्जीव आकृति से किसी की मौत नही हो सकती । यहाँ १४ पूर्वधर को बिडाल की मूर्ति मे भी मूर्तिमान अभिप्रेत है, किन्तु इसप्रकार की सूक्ष्म बात की समझ बिना गुरुगम के कारण स्थानकपथी को कभी नही आयेगी, कि—"१४ पूर्वधर ने भी बालक की मौत का कारण बिडाल से कहा था, जोकि लोहे के कपाट पर उत्कीर्ण निर्जीव बिडाल की आकृति मात्र थी ।"

स्पष्ट तथ्य यह है कि केवलज्ञानी तुल्य देशना देने वाले चौदह पूर्वधर श्रीमद् भद्रबाहु स्वामी ने बिडाल की आकृति को भी बिडाल कहा है । इसी दृष्टात से आचार्य को भी जानना चाहिए कि जिनेश्वर देव की प्रतिमा भी जिनेश्वर देव के समान कही जाती है ।

यद्यपि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो जैन समाज की यह श्रद्धा है कि—

"जिन प्रतिमा जिन सारिखो" । यानी जिनेश्वर देव की प्रतिमा जिनेश्वर देव के समान ही है। बहुधा स्थानकपंथी लोग श्वेताम्बरो को पत्थर पूजक कहते हैं या भगवान की मूर्ति को पत्थर कहते हैं तो यह उनकी अल्पज्ञता ही है, क्योंकि मूर्ति की पूजा इसलिए नही की जाती है कि वह सोने, चादी या सगमरमर की है, किन्तु वह तीर्थंकर परमात्मा की है इसलिए पूजा की जाती है। वास्तविकता यह है कि जिसका भावनिक्षेप वदनीय-पूजनीय है, उसका नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीनो निक्षेप भी वदनीय-पूजनीय हैं। मूर्ति मूर्तिमान का स्मारक है। मूर्ति द्वारा मूर्तिमान की पूजा की जाती है। सिर्फ नाम स्मरण करने वाले भी अगर नाम स्मरण की गहराई मे उतरें तो जड नाम के स्मरण के पीछे भी यही आशय समाया हुआ है। यद्यपि तीर्थंकर परमात्मा के सिर्फ नाम स्मरण के पक्षधर एव हिमायती स्थानकपंथी मुनि आदि अपनी तस्वीर बडे चाव से खिचवाते, बँटवाते देखे गये हैं, वहाँ भी मूर्ति के पीछे मूर्तिमान के स्मरण का भाव ही होगा या अन्य ? इसका जवाब आचार्य स्वय क्या देंगे ?

जसे पिता वन्दनीय है, तो उनका चित्र-प्रतिमा भी वदनीय-पूजनीय है। इसी तरह नमस्कार महामंत्र वदनीय है, वैसे उनकी तस्वीर भी वदनीय ही है। क्या स्थानकमार्गी नमस्कार महामंत्र की तस्वीर को थूक अथवा पैर लगाकर आशातना करेंगे ?

न्यायविशारद महाज्ञानी पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय महाराज प्रभु के स्तवन मे लिखते हैं कि—

ये जिन प्रतिमा जिनवर सरिखी, पूजो त्रिविधे तुमे प्राणी।
जिन प्रतिमा मे सदेह न रक्खो, वाचक यश की वाणी ।।

यदि स्थानकपथी आचार्यादि को कुपथ त्याग कर सत्यमार्ग पर आना हो, तो उन्हे चौदह पूर्वधर महर्षि श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज का एक ही कथन—"बिडाल की आकृति यानी बिडाल" के तथ्य को अच्छी तरह समझना चाहिए।

जिनप्रवचन और जिनमंदिर के अवर्णवाद और अपलाप करने वाले जिनशासन के अहितकारी तत्त्वों का जितनी हो सके उतनी ताकत से सामना करना चाहिए।

—"श्री उपदेशमाला शास्त्र"

[प्रकरण-२६]

वीर निर्वाण के करीब ६८० साल बाद आगमो की वाचना करवाके पूर्वाचार्यों ने जैनागमो एव आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य को पुस्तकारूढ कर महान उपकार किया है। उत्सूत्र को वज्रपाप समझने वाले, भवभीरु उन पूर्वाचार्यों की प्रामाणिकता ऐसी रही कि जहाँ भी सूत्र-अर्थ विषयक मतभेद आये वहाँ ग्रन्थ मे उन्होने दोनो मतभेद लिख दिये और ऐसे तत्त्वो को विवादास्पद न बनाते हुए लिख दिया कि—"यदत्र तत्त्व तत्तु केवलिनो विन्दन्ति" यानी यहाँ परमार्थ क्या है यह तत्त्वज्ञानी-केवली ही जानें। महाज्ञानी पूर्वाचार्यों की स्वच्छमति देखो कि उन्होने तत्त्व विपरीत हो जाने के डर से आगम सूत्रो पर अपनी स्वतन्त्र राय प्रगट नही की है। उनकी प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के कारण ही हमारे लिये आगम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य सत्य, मान्य और श्रद्धनीय हैं। क्योंकि "पुरुष विश्वास से वचन विश्वास" यह आगम वचन है।

आचार्य हस्तीमलजी को प्रामाणिक पूर्वाचार्यों के कथन पर श्रद्धा और विश्वास प्रतीत नही होता है। अत वे सगरचक्रवर्ती के ६० हजार पुत्रो की मौत पर प्राचीन ग्रथो का सहारा छोडकर पौराणिक गपोडो पर विश्वास कर रहे हैं एव श्री सिद्धसेनसूरिजी के विषय मे

आधुनिक चिंतको के बहाने पूर्वाचार्यों के कथन को झूठा करने को तुले हुए हैं। किन्तु यही इस कल्पित परम्परा की शुरू से आदत रही है। जैनागमो मे सम्यक् श्रद्धा को चारित्र, तप, शील आदि सब धर्मों से प्रथम बताया है। पचसूत्रकर्ता प्राचीनाचार्य ने सम्यक् श्रद्धा के बिना जमालि आदि की चारित्र की सुन्दर क्रिया को भी "कुलटा नारी की क्रिया" कही है, जिसका फल ससार भ्रमण है। आचार्य हस्तीमलजी जैनागम कथित सम्यक् श्रद्धा को अच्छी तरह जानते, तो जैन साहित्य को पलटने की सुधारवादी प्रवृत्ति नही अपनाते। आधुनिक उच्छृखल चिंतको को मान्य और विश्वसनीय बनें ऐसा जैन साहित्य होना चाहिए, इस प्रकार का भाव आचार्य ने खड २, पृ० ३८/३९ पर प्राक्कथन मे प्रगट किया है। यथा—

☼☼☼ इसी प्रकार बहुत सी चमत्कारिक रूप से चित्रित घटनाओं को भी इस ग्रन्थ मे समाविष्ट नहीं किया गया है। मध्ययुगीन अनेक विद्वान ग्रन्थकारो ने सिद्धसेन प्रभृति कतिपय प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र का आलेखन करते हुए उनके जीवन की कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाओ का उल्लेख किया है, जिन पर आज के युग के अधिकाश चिन्तक किसी भी दशा मे विश्वास करने को उद्यत नहीं होते। ☼☼☼

मीमासा—पचमहाव्रत धारक प्राचीनाचार्यो को झूठा करके आगम एव आगमेतर प्राचीन साहित्य मे मनमाना और जीचाहा परिवर्तन करने पर भी उच्छृखल आधुनिक विचारको को प्राचीन जैन साहित्य विषयक बात मान्य बनेगी या नही यह तो विचारणीय ही है। किन्तु प्राचीन जैन साहित्य के विषय मे अपने उन्मार्ग प्रेरक सुधारवादी विचार आचार्य ने आज के युग के अधिकाश चिन्तको के बहाने प्रस्तुत कर दिया है, जो जैनधर्म विषयक प्राचीन साहित्य पर अश्रद्धा एव अविश्वास का सूचक है। स्याद्वाद परिकर्मित मति के अभाव के कारण

ही जमालि आदि शासन बाह्य हो गये थे, आचार्य इस बात को सूक्ष्मता से जानते ही होगे। क्योकि खड १, पृ० ७१८ पर वे लिखते हैं कि—

卐卐卐 बहुत कुछ समझाने पर भी जमालि की भगवान के वचनो पर श्रद्धा प्रतीत नहीं हुई और वह भगवान के पास से चला गया। मिथ्यात्व के अभिनिवेश (दुराग्रह, झूठी जिद्द) से उसने स्वपर को उन्मार्गगामी बनाया और बिना आलोचना के मरण प्राप्त कर किल्विषी देव हुआ। 卐卐卐

मीमासा—उत्सूत्र भाषण के वज्रपाप के कारण ही जमालि शासन बाह्य हो गया और उसने देव दुर्गति पायी। ऐसा निन्हवो के प्रकरणो को जानने वाले स्थानकपथी आचार्य हस्तीमलजी आगम और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य कथित और पूर्वाचार्यों द्वारा विहित एव प्ररूपित जिनप्रतिमा, जिनमदिर, तीर्थो आदि का विरोध करके मिथ्यात्वी जमालि आदि निन्हवो की कोटि मे क्यो प्रवेश करते हैं ? क्योकि जैनधर्म मे स्थानकपथी मत प्रवर्तक लोकाशाह के पहिले जिन-मूर्तिपूजा और जिनमदिर का विरोध किसी जैनाचार्यादि ने किया हो तो आचार्य को प्रामाणिकता से प्रस्तुत करना चाहिए।

राय बहादुर पडित श्री गौरीशकर ओझा अपने "राजपूताना का इतिहास" पृ० १४१८ पर लिखते हैं कि—

卐卐卐 स्थानकवासी श्वेताम्बर समुदाय से पृथक् हुए जो मन्दिरो और मूर्तियो को नहीं मानते हैं। उस शाखा के भी दो भेद हैं, जो बारहपन्थी और तेरहपथी कहलाते हैं। ढू ढियो (स्थानकपथी) का समुदाय बहुत प्राचीन नहीं है, लगभग ३०० वर्ष से यह प्रचलित हुआ है। 卐卐卐

मीमासा—मूर्ति और मदिर का विरोध करने वाले श्रीमान् लोकाशाह के गच्छवाले आचार्य जो "लोकागच्छीयाचार्य" के नाम से

पुकारे जाते थे, उन्होने ही मदिर बनवाकर जिनमूर्तियो की प्रतिष्ठा करवायी थी। एक तथ्य और भी है जिससे विद्यमान प्राचीन साहित्य और करीब करीब सभी स्थानकपथी विद्वान सहमत है कि लोकाशाह ने स्वमति कल्पना मे केवल जिनमदिर और जिनप्रतिमा का ही विरोध किया था, किन्तु बाद मे "लवजी" नामक स्थानकपथी साधु ने सूरत (गुजरात) मे वि० स० १७०९ (ई० स० १६५२) मे मुँह पर मुँहपत्ती बांधकर इस मत का प्रवर्तन किया था, न कि लोकाशाह ने। यानी आजके स्थानकपथी लोकाशाह के नही किन्तु लवजीऋषि की परम्परा (सतानीय) के हैं। स्थानकपथी पडित लिख रहे हैं कि—

☼ ☼ ☼ मुख बन्धन श्री लोकाशाह के समय से शुरु नहीं हुआ है, किन्तु उसके बाद हुए स्वामी लवजी के समय से शुरु हुआ है और वह [मुख पर मुँहपत्ती बाधना] आवश्यक भी नहीं है। ☼ ☼ ☼

[जैन ज्योति, दिनाक १८-७-३६, पृ० १७२, लेखक—राजपाल मगनलाल बोहरा, गुजराती पर से हिन्दी]

श्वेताम्बर जैन श्रावक श्री रणजीतसिंहजी भण्डारी [जयपुर] "सत्यसदेश" किताब पृ० (ख) पर लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ मुँहपत्ती रात दिन मुँह पर बाधने से बार बार थूँक की चिपचिपी, चतुरस्पर्शी जीवों का ताडन प्रताडन, बोलने मे असुविधा तथा चेहरे के सही भाव व्यक्त करने की सुविधा से वचित होना आदि। क्या यह वैज्ञानिक कसौटी पर खरी उतर सकेगी ? ☼ ☼ ☼

मीमासा—एक मदिर और मूर्ति के पीछे स्थानकवासियो को जैनागमो और प्राचीन जैन साहित्य को भी झूठा कहने की एव पलटने की नौबत आती है और कुवेष रचकर वे हास्यास्पद भी बनते हैं।

जन्म से स्थानकमार्गी पंडित सुखलालजी अपने पर्यूषणा के व्याख्यान मे लिखते हैं कि—

✲ ✲ हिन्दुस्तान मे मूर्ति के विरोध की विचारणा मुहम्मद पैगम्बर के पीछे उनके अनुयायी अरबी और दूसरो द्वारा धीरे धीरे प्रविष्ट हुई।

जैन परम्परा मे मूर्ति विरोध को पूरी पाच शताब्दी भी नहीं बीती है [मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास मे से] ✲ ✲

मीमासा—वास्तविकता तो यह है कि मूर्ति विरोध करने वालो के पास भी जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये मदिर और मूर्ति को छोडकर अन्य प्रमाण ही क्या है ? स्वय आचार्य हस्तीमलजी ने ही नदीसूत्र एव कल्पसूत्र की पट्टावलियो को प्राचीन जिनप्रतिमा की चौकियो पर उट्टकित लेख एव प्राचीन शिलालेखो का सहारा लेकर ही प्राचीन एव प्रामाणिक निर्णीत किया है।

विद्वान लेखक मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज अपनी "मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास" नामक किताब के पृ० ७ पर लिखते है कि—

✲ ✲ ✲ स्थानकवासी मत प्रवर्तक लोकाशाह [स्थानकपथी परम्परा के आद्यप्रणेता एक वृद्ध जैन भाई] पर मुस्लिम सस्कृति का बुरा प्रभाव था और मूर्तिविरोधी उनकी मान्यता को मुसलमानो ने सहायता की थी। ✲ ✲ ✲

मीमासा—जैनधर्म मे मदिर और मूर्तिविरोधी मान्यता का आद्यप्रणेता लोकाशाह को माना जाता है, जो कि एकवृद्ध जैनभाई था और शास्त्रो को लिखकर अपनी आजीविका चलाने वाला लिखारी मात्र था। और उससे चले हुए लोकागच्छीय आचार्यों ने ही मूर्तिपूजा

का समर्थन किया है। स्थानकपंथियो मे घर के आगन मे ही लोकाशाह के विषय मे काफी मतभेद हैं एवं इसकी दीक्षा के विषय मे भी इतने ही मतभेद हैं।

हमारा तो इतना ही कहना है कि स्थानक पथी अगर पूर्वाचार्यों पर श्रद्धा रखते हैं तो उनके मार्ग को उन्हे अपनाना चाहिए। अन्यथा श्रद्धाभ्रष्ट के विषय मे आचार्य स्वय खड २, पृ० ५७ पर लिखते हैं कि—

☼☼☼ दसण भट्ठो भट्ठो, दसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाण।
सिज्झति चरण रहिया, दसण रहिया न सिज्झति ॥

अर्थात्—दर्शनभ्रष्ट (श्रद्धा से पतित) भ्रष्ट है, ऐसे श्रद्धाभ्रष्ट का निर्वाण (मोक्ष) नहीं होता, (द्रव्य) चारित्र बिना भी मोक्ष है, किन्तु श्रद्धा रहित का मोक्ष नहीं है। ☼☼☼

मीमासा— श्री ठाणाग सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि अनेक आगम सूत्रो मे जगह जगह शाश्वत-अशाश्वत जिनप्रतिमा और जिन मन्दिर आदि की बात आती है। आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि मे भी जिनमन्दिर, स्तूप आदि की बात लिखी है। प्राचीन ऐतिहासिक अवशेष भी मूर्तिपूजा की ठोस सिद्धि करते हैं एव पूर्वाचार्यों ने ही सम्मेदशिखर, शत्रु जय, गिरनारजी, पावापुरी, चपापुरी आदि अनेक तीर्थों एव तीर्थंकरो की कल्याणक भूमियो पर जिनमन्दिर निर्माण करवाये हैं और उनमे जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा भी करवायी है। ऐसी दशा मे कम से कम श्रद्धावन्त कोई भी जैन जिन-प्रतिमा और मदिर के तथ्य को स्वीकार किये बिना नही रह सकता और इसमे ही अनेकान्त दृष्टि सन्निहित है।

अनेकान्त दृष्टि के कारण ही अनेक स्थानकपथी मुनियो ने मुँहपत्ति का डोरा तोडकर शुद्ध सवेगी साधु मार्ग अपनाया था। "सत्य-सदेश" सपादक-पारसमल कटारिया। लेखक—सौभाग्यचन्द लोढा—पृ० २३ पर लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ उन्होने ढू को त्यागकर शुद्ध सवेगी मत स्वीकार किया। ✲ ✲ ✲

मीमासा—गणिवर श्री मुक्तिविजयजी (मूलचन्दजी), गणिवर श्री बुद्धिविजयजी (बूटेरायजी), महोपाध्याय श्री रणधीर विजयजी, महान जैनाचार्य पूज्य श्री विजयानन्दसूरिजी (आत्माराम जी), मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी आदि अनेक विद्वानो ने कल्पित जानकर स्थानक पथ का त्याग किया था और शुद्ध संवेगी साधु मार्ग मे दीक्षा ली थी और साहित्य लेखन द्वारा स्थानकमत विषयक भ्रमजाल का पर्दा खोलने का सराहनीय प्रयास किया था। बात तो यह है कि भोली जनता को अधेरे मे तब तक ही भटकाया जा सकता है जब तक उनमे सस्कृत-प्राकृत भाषा द्वारा ज्ञान का प्रकाश न हो।

आश्चर्य तो इस बात का है कि स्थानकपथी अपने आद्य-प्रवर्तक लोकाशाह के बताये रास्ते से भी विपरीत चलते हैं, वे अगर उनसे भी प्राचीन शास्त्रो को मान्य नही करे तो आश्चर्य ही क्या है ?

खंड १, पृ० ६६९ पर आचार्य लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ १४ पूर्व के रचियता गौतमस्वामी आनन्द को मिच्छामि-दुक्कड देते हैं। ✲ ✲ ✲

का समर्थन किया है । स्थानकपथियो मे घर के आगन मे ही लोकाशाह के विषय मे काफी मतभेद हैं एव इसकी दीक्षा के विषय मे भी इतने ही मतभेद हैं ।

हमारा तो इतना ही कहना है कि स्थानक पथी अगर पूर्वाचार्यों पर श्रद्धा रखते हैं तो उनके मार्ग को उन्हे अपनाना चाहिए । अन्यथा श्रद्धाभ्रष्ट के विषय मे आचार्य स्वय खड २, पृ० ५७ पर लिखते हैं कि—

❋❋❋ दसण भट्ठो भट्ठो, दसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाण ।
सिज्झति चरण रहिया, दसण रहिया न सिज्झति ॥

अर्थात्—दर्शनभ्रष्ट (श्रद्धा से पतित) भ्रष्ट है, ऐसे श्रद्धाभ्रष्ट का निर्वाण (मोक्ष) नहीं होता, (द्रव्य) चारित्र विना भी मोक्ष है, किन्तु श्रद्धा रहित का मोक्ष नहीं है । ❋❋❋

मीमासा—श्री ठाणाग सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि अनेक आगम सूत्रो मे जगह जगह शाश्वत-अशाश्वत जिनप्रतिमा और जिन मन्दिर आदि की बात आती है । आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य, टीकादि मे भी जिनमन्दिर, स्तूप आदि की बात लिखी है । प्राचीन ऐतिहासिक अवशेष भी मूर्तिपूजा की ठोस सिद्धि करते हैं एव पूर्वाचार्यों ने ही सम्मेदशिखर, शत्रुजय, गिरनारजी, पावापुरी, चपापुरी आदि अनेक तीर्थों एव तीर्थंकरो की कल्याणक भूमियो पर जिनमन्दिर निर्माण करवाये है और उनमे जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा भी करवायी है । ऐसी दशा मे कम से कम श्रद्धावन्त कोई भी जैन जिन-प्रतिमा और मदिर के तथ्य को स्वीकार किये बिना नही रह सकता और इसमे ही अनेकान्त दृष्टि सन्निहित है ।

अनेकान्त दृष्टि के कारण ही अनेक स्थानकपथी मुनियो ने मुँहपत्ति का डोरा तोडकर शुद्ध सवेगी साधु मार्ग अपनाया था। "सत्य-सदेश" सपादक-पारसमल कटारिया। लेखक—सौभाग्यचन्द लोढा—पृ० २३ पर लिखते हैं कि—

※ ※ ※ उन्होंने ढू   को त्यागकर शुद्ध सवेगी मत स्वीकार किया। ※ ※ ※

मीमासा—गणिवर श्री मुक्तिविजयजी (मूलचन्दजी), गणिवर श्री बुद्धिविजयजी (बूटेरायजी), महोपाध्याय श्री रणधीर विजयजी, महान जैनाचार्य पूज्य श्री विजयानन्दसूरिजी (आत्माराम जी), मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी आदि अनेक विद्वानो ने कल्पित जानकर स्थानक पथ का त्याग किया था और शुद्ध संवेगी साधु मार्ग मे दीक्षा ली थी और साहित्य लेखन द्वारा स्थानकमत विषयक भ्रमजाल का पर्दा खोलने का सराहनीय प्रयास किया था। बात तो यह है कि भोली जनता को अधेरे मे तब तक ही भटकाया जा सकता है जब तक उनमे सस्कृत-प्राकृत भाषा द्वारा ज्ञान का प्रकाश न हो।

आश्चर्य तो इस बात का है कि स्थानकपथी अपने आद्य-प्रवर्तक लोकाशाह के बताये रास्ते से भी विपरीत चलते हैं, वे अगर उनसे भी प्राचीन शास्त्रो को मान्य नही करे तो आश्चर्य ही क्या है ?

खड १, पृ० ६६९ पर आचार्य लिखते हैं कि—

※ ※ ※ १४ पूर्व के रचियता गौतमस्वामी आनन्द को मिच्छामि-दुक्कड देते हैं। ※ ※ ※

मीमासा—यह तो अनजान से भूल हुई उसकी माफी श्री गौतम स्वामी मागते हैं, किन्तु जानबूझकर और मायावृत्ति के साथ की गयी भूलो के लिये गहरे प्रायश्चित्त की आवश्यकता है। अत इतिहास के अन्त मे मिच्छामि दुक्कडम्' ऐसा आचार्य लिख दे, तो उससे दुष्कृतगर्हा नही हो सकती।

जिसका मन समकित मे निश्चल।
कोई नही तस तोले रे॥

—पू० यशोविजयजी महाराज

[प्रकरण–२७]

नुि ।

आचार्य हस्तीमलजी ने "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" नामक पुस्तक लिखकर साम्प्रदायिक कटुता उभारने का अप्रस्तुत्य प्रयत्न किया है। इन्ही महाशय ने ही इसके पहिले "पट्टावली प्रबध सग्रह" नामक एक किताब जिसका डा० नरेन्द्र भाणावत (जयपुर) ने सपादन किया है, छपवाकर जिनमूर्ति पूजा विषयक "इस प्रकार स० ८८२ मे हिंसाधर्म प्रगट हुआ" तथा प्राचीन सयमी जैनाचार्यों पर 'वे शिथिलाचारी थे" आदि लिखकर अनर्गल आक्षेप किये हैं।

"सत्य सदेश" किताब द्वारा जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ (जयपुर) ने उक्त विषय मे जागरुकता दिखायी है, किन्तु खेद है कि ऐसी साम्प्रदायिक कटुता उभारने वाली पुस्तक का व्यापक विरोध होना चाहिए था, वह नही हुआ है। इसके कारण ही आज भी आचार्य हस्तीमलजी द्वारा दूषित साहित्य निर्माण कर विषैला प्रचार चालू ही रहा है।

एकता और शान्ति हमे पसन्द है, किन्तु स्थानकपथ के कर्णधार आचार्य सत्य को तोड-मरोड कर उसका कुप्रचार करें, वह असह्य है। स्थानकपथी समाज के कर्णधार द्वारा ऐसी अनुचित और गलत प्रवृत्ति कब से प्रारम्भ हो चुकी है, जिसने बडा विवाद जगाया है, जिसका जैन समाज द्वारा व्यापक प्रतिहार होना अत्यन्त आवश्यक है।

उक्त 'पट्टावली प्रबन्ध सग्रह' नामक ग्रन्थ जो आचार्य हस्तीमलजी ने लिखा है इस विषय मे तटस्थ साहित्यकार, पुरातत्त्वज्ञ विद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा "सत्य सदेश" पुस्तक मे पृ० (क) पर—"एक अत्यावश्यक स्पष्टीकरण" लिखते हैं कि—

✲✲✲ मूर्तिपूजा के सम्बन्ध मे भी इस ग्रन्थ मे प्रकाशित कई बातें सर्वथा गलत और साम्प्रदायिक कटुता को उभारने वाली हैं।

[सत्य सदेश, सपादक—पारसमलजी कटारिया, जयपुर] ✲✲✲

मीमासा—श्री अगरचन्दजी नाहटा का उक्त कथन सर्वथा सत्य है। मूर्तिविरोधी गलत मान्यता वाले आचार्य के साहित्य की तटस्थ एव प्रामाणिक कोई भी विद्वान् प्रशसा नही कर सकता। डा० नरेन्द्र भाणावतजी जैसे विद्वान् भी जब साम्प्रदायिक कटुता उभारने वाले षड्यत्र मे ऐसे महाशय को साथ-सहकार-प्रोत्साहन देते हैं तब हमे सखेद आश्चर्य होता है।

"जैन धर्म का मौलिक इतिहास" पुस्तक के एक मुख्य सपादक न्याय-व्याकरण तीर्थ श्री गजसिंहजी राठौड ने खड १ (पुरानी आवृत्ति) मे "सपादकीय नोध" के पृ० ३३ से ४२ तक आचार्य हस्तीमलजी की लम्बी-चौडी आत्मवचक खुशामद की है। पृ० ३० पर वे लिखते हैं कि—

✲✲✲ इतिहास-लेखन जैसे कार्य के लिये गहन अध्ययन, क्षीर नीर विवेकमयी तीव्र बुद्धि, उत्कृष्ट कोटि की स्मरण शक्ति, उत्कट साहस, अथाह ज्ञान, अडिग अध्यवसाय, पूर्ण निष्पक्षता, घोर परिश्रम आदि अत्युच्चकोटि के गुणो की आवश्यकता रहती है। वे सभी गुण आचार्य श्री (हस्तीमलजी) मे विद्यमान हैं। ✲✲✲

मीमासा—ऐसा लगता है कि स्थानकपंथियो मे अपनी प्रशसा करवाने का विशेष प्रलोभन होता है । उनके माने हुए ३२ आगमो पर कुछ वृत्ति–चूर्णि–भाष्य–टीकादि के सहारे से, कुछ इधर–उधर से लेकर और वह भी भूलो एव झूठो से भरा हुआ सिर्फ "हिन्दी अनुवाद" करने वाले अमोलक ऋषि नामक स्थानकपथी साधु ने अपनी हिन्दी अनुवादित पुस्तको के पन्ने–पन्ने पर अपना नाम लिखवाया और छपवाया है । ऐसा तो सस्कृत और प्राकृत भाषा मे जैनागमो पर स्वतत्र प्रचुर साहित्य रचने वाले पूज्य हरिभद्रसूरिजी, पूज्य अभयदेवसूरिजी, पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज एव पूज्य यशोविजयजी उपाध्याय महाराज आदि महान् विद्वानो ने भी नही किया है । उक्त अमोलक ऋषि की परम्परा के आचार्य हस्तीमलजी भी एक महाशय हैं, जिन्होने मन-कल्पित एव जीचाहा जैनधर्म सम्बन्धित इतिहास आदि साहित्य नामधारी एक समिति द्वारा रचवाया है और उसमे अपनी जीभर प्रशसा करवायी है ।

श्री गजसिहजी द्वारा प्रशसा करवाने वाले आचार्य हस्तीमलजी स्वय प्राचीन जैनाचार्यों को झूठा करने हेतु खड–१, पृ० १२३ पर लिखते हैं कि—

☼☼☼ छद्मस्थ साहित्यकारो द्वारा चरित्र–चित्रण मे अतिशयोक्ति होना असभव नहीं । ☼☼☼

मीमासा—आचार्य के उपरोक्त कथन से गजसिहजी राठौड का भ्रम नष्ट हो गया होगा । यानी छद्मस्थ गजसिहजी राठौड द्वारा किया गया "आचार्य हस्तीमलजी" का चरित्र–चित्रण अतिशयोक्तिपूर्ण होना सर्वथा सभव है । क्योकि मुख्य सपादक गजसिहजी छद्मस्थ होने के साथ साथ वैतनिक भी हैं, इसके कारण वे "अहो रूप, अहो ध्वनि" वाला प्रसग यदि प्रस्तुत करें तो उसमे उनका स्वार्थ उनको बाध्य कर सकता है तथा गृहस्थ होने के कारण शायद

वे सत्य बोलने की प्रतिज्ञा वाले भी नही होगे, अत आचार्य हस्तीमलजी के विषय मे उनका कथन अतिशयोक्ति से भरपूर हो तो उसमे आश्चर्य ही क्या ?

रही बात पूर्वाचार्यो की, सो वे तो भवभीरु और पचमहाव्रतो के धारक सत्यप्रतिज्ञ थे, झूठ और अतिशयोक्तिपूर्ण लिखने का जिनको कोई प्रयोजन ही नही था । ऐसे सत्यप्रिय जैन पूर्वाचार्य कथाग्रन्थ के चरित्रचित्रण मे अतिशयोक्ति क्यो करेगे ?

तथा छद्मस्थ होने के कारण पूर्वाचार्यो के कथन को अतिशयोक्तिपूर्ण कहने पर तो तीर्थंकर और केवलज्ञानियो को छोडकर अन्य सब झूठे ही ठहरेंगे, फिर तो स्वय छद्मस्थ आचार्य हस्तीमलजी का साहित्य सर्वथा झूठा और अप्रमाणिक सिद्ध हो जाता है । खैर ! आचार्य द्वारा रचित इस इतिहास मे ऐसी तो अनेक गलतिया भरी पडी है, जो गजसिंहजी राठौड द्वारा कथित उनकी क्षीर-नीर विवेक-मयी तीव्र बुद्धि पर बडा प्रश्नार्थचिह्न लगाने वाली है।

आचार्य हस्तीमलजी के विषय मे ऐसी ही अतिशयोक्ति पूर्ण बात पडित श्री दलसुखजी मालवणिया ने भी लिखी है । खड-१, पृ० ६ पर "प्रकाशकीय नोध" मे पडित दलसुखजी मालवणिया के प्रशसा सूचक वचन को आकर्षक रूप मे प्रगट किया गया है । वे आचार्य के इतिहास के विषय मे अनुचित खुशामद करते हैं कि—

※ ※ ※ बहुत काल तक आपका यह इतिहास ग्रथ प्रामाणिक इतिहास के रूप मे कायम रहेगा। नये तथ्यो की सभावना अब कम ही है। ※ ※ ※

मीमासा—ऐसा लगता है श्री मालवणियाजी को सपूर्ण इतिहास ध्यान से पढने का समय ही न मिला हो, सभव है सिर्फ ऊपर-ऊपर से देखकर ही जरूरत से ज्यादा आत्मविश्वास और साहस के

साथ उक्त निर्णय उन्होंने दे दिया हो, क्योंकि इतिहास मे जगह जगह पर "यह विचारणीय है", "इस पर विशेष प्रकाश इतिहासज्ञ डालेगे," इस प्रकार लिखकर अनेक प्रश्नो को इतिहासकार आचार्य हस्तीमलजी ने अपूर्ण एव अनिर्णीत ही छोड दिया है । यथा खड–१ (पुरानी आवृत्ति) 'अपनी बात' मे पृ० १७ पर भगवान श्री महावीर स्वामी का रात्रि विहार एव ब्राह्मण को अर्धवस्त्रदान आदि बातो के विषय मे आचार्य लिखते हैं कि—

❋❋❋ इन सब की सगति क्या हो सकती है ? इस पर गीतार्थ गभीरता से विचार करें। ❋❋❋

मीमासा—मुख्य सम्पादक गजसिंहजी आचार्य हस्तीमलजी को अथाहज्ञानी, घोर परिश्रमी आदि अत्युच्चकोटि के गुणो के मालिक कहते हैं, कथित गुणो से युक्त आचार्य ने उक्त विषयो को अन्य के भरोसे क्यो छोडा ? "अथाहज्ञानी" (!) आचार्य स्वय ने इस पर गभीरता से विचार क्यो नही किया ? ऐसी दशा मे गजसिंहजी द्वारा की गयी आचार्य की खुशामद क्या आत्मवचक नही ठहरती ? और इस बात से मालवणियाजी का भी भ्रम नष्ट हो गया होगा ।

जिसको बौद्धधर्म सम्बन्धित बताया जाता है, ऐसे "बौद्ध धर्मचक्र" और चतुर्मुख सिंहाकृति वाला सारनाथ के स्तभ के विषय मे आचार्य खड–२, पृ० ४५१ पर लिखते हैं कि—

❋❋❋ सिंह का सबध बुद्ध के साथ उतना सगत नहीं बैठता जितना कि भगवान महावीर के साथ । भगवान महावीर का चिन्ह (लाछन) सिंह था और केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् भगवान महावीर के साथ–साथ सिंह का चिन्ह भी चतुर्मुखी दृष्टिगोचर होने लगा था । सिंह चतुष्टय पर धर्म-चक्र इस बात का प्रतीक है कि जिस समय तीर्थंकर विहार करते हैं, उस समय

धर्मचक्र नभमण्डल मे उनके आगे आगे चलता है । इस प्रकार के अनेक गहन तथ्य हैं, जिनके सम्बन्ध मे गहन शोध की आवश्यकता है । ☼ ☼ ☼

मीमासा—"केवलज्ञान के बाद भगवान श्री महावीर स्वामी चतुर्मुखी दृष्टिगोचर होने लगे थे"—इस तथ्य मे प्रतिमा का सिद्धान्त समाया हुआ है, क्या आचार्य इस सत्य को स्वीकार करेंगे ? और प्रस्तुत मे आचार्य स्वय कह रहे हैं कि—"इस प्रकार के अनेक गहन तथ्य हैं, जिनके सम्बन्ध मे गहन शोध की आवश्यकता है," स्वय आचार्य द्वारा लिखित इस बात पर से मालवणियाजी का कथन "नये तथ्यो की सभावना अब कम ही है" सर्वथा अप्रमाणिक और झूठ ही सिद्ध होता है । साथ ही साथ मुख्य सपादक श्री गर्जसिहजी द्वारा कथित "घोर परिश्रमी" आचार्य स्वय क्यो उक्त विषयो मे गहन शोध नही करते है ?

आचार्य हस्तीमलजी ने "सभव है" ऐसा लिखकर प्राचीन जैनाचार्यों के कथन को अप्रमाणिक करते हुए पौराणिक गपोडो को भी मान्यता दी है एव जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा आदि के विषय मे ऐतिहासिक शिलालेखो आदि अवशेष विशेषो के सत्य होते हुए भी आचार्य ने अपने इतिहास मे गलत एव कल्पित जो बातें लिखी हैं, इन बातो का मालवणियाजी को अगर थोडा सा भी पता होता तो आचार्य द्वारा लिखित अप्रमाणिक इतिहास की प्रशसा करने का साहस वे नही करते । इस तथ्य को मालवणियाजी सर्वथा भूल ही गये हैं कि कोई भी स्थानकपथी चाहे वह आचार्य पदारूढ क्यो न हो, जैन धर्म विषयक सत्य और प्रामाणिक इतिहास लिख ही नही सकता, क्योकि जैनधर्म के इतिहास के मूल मे जिनमदिर और जिनप्रतिमा का एक अनूठा ही स्थान है, जिन से स्थानक पथियो को दुश्मनी है ।

अग्रेज विद्वान डा० हर्मन जैकोबी के विषय मे आचार्य हस्तीमलजी निम्न बात लिखते हैं, इससे 'नये तथ्यो की सभावना अब

कम ही है''—ऐसा मालवणियाजी का लिखना कितना आत्मवचक एव भ्रामक है, इस बात की पुष्टि अपने आप हो जाती है। अग्रेज विद्वान डा० हर्मन्न जैकोबी के जैनधर्म विषयक कथनो के विषय मे खड १, पृ० ७६८ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ डा० जैकोबी की धारणा के वाद ३१ वर्ष के सुदीर्घ काल मे इतिहास ने बहुत कुछ नई उपलब्धिया की हैं, इसलिए भी डा० जैकोबी के कथन को अन्तिम रूप से मान लेना यथार्थ नहीं है। ❋ ❋ ❋

मीमासा—इसी प्रकार हमारा भी यही कहना है कि "नये तथ्यो की सभावना अब कम ही रही है''—ऐसा पडित श्री मालवणियाजी का लिखना अनुचित एव तथ्यहीन होने के कारण अविश्वसनीय ही है।

जिनपूजनसत्कारयो करणलालस
खल्वाद्यो देशविरति परिणाम ।

अर्थात्—देशविरति (श्रावक) धर्म का आद्य परिणाम श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा और सत्कार करने की लालसा है। यानी जिसे श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा और सत्कार करने की लालसा नही है, उसे पचम गुणस्थानक स्वरूप देशविरति-श्रावकपन का आद्य परिणाम भी प्राप्त नही है।

—१४४४ ग्रथ के रचयिता श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज

[प्रकरण—२८]

रा । म ति ` । न ।

स्थानकपथी सप्रदाय के कर्णधार माने जाने वाले आचार्य ने अपने इतिहास मे जिनमन्दिर एव जिनप्रतिमादि विषयो पर तोड-मरोड की प्रक्रिया प्रचुर मात्रा मे की है । आश्चर्य तो इस बात का है, आचार्य ने नामधारी समिति द्वारा जीचाहा इतिहास बनाया है, जिसको जैनधर्म का इतिहास कहना जैनधर्म की मजाक उडाने के समान है। आचार्य का इतिहास भ्रामक एव कपोत कल्पित तत्त्वो से परिपूर्ण है, वह उनकी गरिमा के अनुरूप नही है । खड—२, पृ० ६३३ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☼☼☼ आर्यवृद्ध देव के पश्चात् आर्य प्रद्योतनसूरि गणाचार्य हुए । पट्टावलियो मे इस प्रकार का उल्लेख उपलब्ध है कि अजमेर और स्वर्णगिरि मे आपने प्रतिष्ठा करवायी थी । पर स्वर्गीय मुनि कान्तिसागरजी के अनुसार इतिहास के प्रकाशन मे इस प्रकार के उल्लेखो की सच्चाई सदिग्ध मानी गई है। ☼☼☼

मीमासा—अजमेर और स्वर्णगिरि मे आचार्य श्री प्रद्योतन-सूरिजी ने किसकी प्रतिष्ठा करवायी थी ? जिनमूर्ति प्रतिष्ठा के इस सत्य को तो आचार्य ने छिपा ही लिया । कल्पसूत्र और नदीसूत्र की प्राचीन पट्टावलियो के प्रामाणिक और विश्वसनीय प्रमाण को छोडकर इतिहासकार (!) आचार्य ने अपना उल्लू सीधा करने के लिये स्वर्गीय

मुनि कान्तिसागरजी के वचनो का कल्पित सहारा लिया है। आचार्य हस्तीमलजी ने यह तो लिखा ही नही है कि श्री कान्तिसागरजी कब हुए? और वे कौनसे प्रामाणिक इतिहासकार थे? कौनसे ग्रन्थ के किस पृष्ठ पर उन्होने ऐसा लिखा है कि—"इतिहास के प्रकाशन मे इस प्रकार के उल्लेखो की सच्चाई सदिग्ध मानी गई है।" इस प्रकार के यानी कौन से प्रकार के? श्री कान्तिसागरजी के इस विषय मे कौनसी न्यायसगत युक्ति दी है? इन सब प्रश्नो का सत्यप्रतिज्ञ आचार्य को प्रमाणिक उत्तर देना चाहिए और स्वर्गीय कान्तिसागरजी ने क्या ऐसा लिखा है कि—"अजमेर और स्वर्णगिरि मे प्रद्योतनसूरि ने प्रतिष्ठा नही करवायी है?" इसका भी उत्तर आचार्य दे। बात तो यह है कि नदीसूत्र और कल्पसूत्र की प्रामाणिक एव प्राचीन पट्टावलियो का तथ्यपूर्ण सहारा लेना छोडकर स्वर्गीय कान्तिसागरजी के नाम से अतात्विक, ऊटपटाग और इधर-उधर की किवदन्ती स्वरूप तथ्यहीन बात का सहारा आचार्य ने क्यो लिया? इन सब बातो से आचार्य की स्वेच्छाचारिता सिद्ध होती है, अत हमारा यही कहना है कि आचार्य हस्तीमलजी द्वारा रचित इतिहास सच्चाई से सर्वथा रहित ही है।

आश्चर्य तो तब होता है कि सत्य तथ्य को तोड-मरोड कर विपरीत रूप से लिखने वाले खड-१ (पुरानी आवृत्ति) पृ० ७० पर इतिहासज्ञो को हितशिक्षा देते हैं कि वस्तुस्थिति के अन्त स्तल तक पहुँचकर सत्य का अन्वेषक बनना चाहिए। यथा—

☼ ☼ ☼ खेद है कि हम अपनी दृष्टि से किसी भी विषय के अन्त स्तल तक नहीं पहुँचते और पुरानी लकीर के ही फकीर बने हुए हैं। ☼ ☼ ☼

मीमासा—प्रतिमापूजा और जिनमन्दिर आदि जैनधर्म के विषयो के अन्त स्तल तक आचार्य आदि स्वय क्यो नही पहुँचते? वे स्वय

क्यो सत्य का पक्ष छोडकर असत्य और झूठ का सहारा लेकर पुरानी लकीर के ही फकीर बन बैठे हैं ? सत्य के पक्षधर बनने मे उनको कौन बाधा दे रहा है ?

पुरानी लकीर के फकीर बनकर ही आचार्य ने एक विषैला सूत्र प्रचार करवाया है, यथा—

गुरु हस्ती के दो फरमान ।
सामायिक स्वाध्याय महान ।।

यद्यपि देखने मे यह सूत्र निर्दोष लगे किन्तु इसके पीछे एकान्तवाद समाया हुआ है अत उनका यह सूत्र गलत है । क्या सामायिक और स्वाध्याय ही महान हैं ? क्या तप, त्याग, ज्ञान-ध्यान, ब्रह्मचर्य, प्रभुभक्ति, गुरुसेवा, अहिंसा आदि धर्मकार्य महान नही हैं ? सच तो यह है कि फरमान करने वाले गुरु हस्तीमलजी है ही कौन ? किन्तु उनको पूछने वाला भी कौन है ?

पूर्वजन्म के दीक्षादाता उपकारी गुरु आर्य श्री सुहस्ति महाराज को देखकर राजा सप्रति को पूर्वजन्म का स्मृतिज्ञान हो गया था । "पूर्वजन्म मे गुरु ने दीक्षा देकर उपकार किया था, इसके कारण मैंने इस जन्म मे राजऋद्धि पायी है" ऐसा सोचकर उपकारी गुरु के उपकार के बदले मे गुरु की प्रेरणा से राजा सप्रति ने सवालाख जिन मन्दिर और सवा करोड जिनप्रतिमा बनवायी थी । इस विषय मे "जिन प्रतिमा मडन" नामक सुप्रसिद्ध स्तवन मे न्यायविशारद श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय लिखते हैं कि—

वीर पछी बसे नेवु वरसे, सप्रति राय सुजाण ।
सवा लाख प्रसाद कराव्या, सवा कोडी बिंब स्थाप्या,

हो कुमति क्यो प्रतिमा उत्थापी ?
ये जिन वचन से स्थापी ।।

जैनागम को प्रमाण करके आर्य श्री सुहस्ति महाराज ने सप्रति राजा को जैन सस्कृति के प्रचार प्रसार हेतु जिनमदिर एव जिन-प्रतिमा बनवाने की प्रेरणा दी थी, इस सत्य की "तपागच्छ पट्टावली" नामक प्राचीन ग्रन्थ भी पुष्टि करता है । इस ग्रन्थ के आधार पर स्वय आचार्य हस्तीमलजी भी खड २, पृ० ४५६ पर लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ सम्प्रति के विषय मे कतिपय जैन ग्रन्थो मे इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि उसने भारत के आर्य एव अनार्य प्रदेशो मे इतने जैन मदिरो का निर्माण करवाया था कि वे सारे प्रदेश जिनमन्दिरो से सुशोभित हो गये ।

[तपागच्छ पट्टावली] ❋ ❋ ❋

मीमासा—'कतिपय' शब्द से आचार्य का क्या तात्पर्य है यह अस्पष्ट ही है । स्थानकपथ के आद्यप्रणेता जैन गृहस्थी लोकाशाह ने दीक्षा ली थी (?) ऐसा कही से अल्पविराम सा सहारा मिलने पर पूर्णविराम तक लिखने के कलाकार आचार्य हस्तीमलजी कतिपय ग्रन्थो का प्रामाणिक सहारा होने पर भी जिनप्रतिमा जैसे ऐतिहासिक सत्य तथ्य को क्यो नही मानते हैं ? वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि शास्त्र भी इस तथ्य से सहमत है, फिर भी आचार्य अप्रमाणिक वर्तन क्यो करते हैं ? क्योकि उसी पृष्ठ पर आचार्य स्वय लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ चूर्णि और निर्युक्तियो मे यह भी सूचित किया गया है कि सम्प्रति ने प्रचुरमात्रा मे जिनमूर्तियो की मदिर एव देवशालाओ मे स्थापना करवा कर जैन सस्कृति और सभ्यता को स्थान—स्थान पर फैलाया था । ❋ ❋ ❋

मीमासा—उक्त कथनानुसार वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति आदि शास्त्रो का प्रामाणिक सहारा होते हुए भी एव प्राचीन मदिर, मूर्ति, शिलालेख आदि का तथ्य होते हुए भी आचार्य हस्तीमलजी सम्प्रदायवाद के व्यामोह मे मूलपथ से विचलित होकर मृषावाद का आश्रय खड २, पृ० ४५९ पर इस प्रकार करते हैं कि—

✲✲✲ जहाँ तक जैन मूर्ति-विधान एव उपलब्ध पुरातन अवशेषो का प्रश्न है, यह बिना किसी सकोच के कहा जा सकता है कि राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मदिर या मूर्तियाँ भारतवर्ष के किसी भी भाग मे आजतक उपलब्ध नहीं हो पाई है। ✲✲✲

मीमासा—अचार्य पदारूढ व्यक्ति का यह एक सफदे झूठ है। मूर्ति मे मूर्तिमान के दशर्न करने के ज्ञान से जो अनभिज्ञ है एव जो मदिर मे जाना पाप समझते हैं और अपने अनुयायियो को मन्दिर मे नही जाने की सौगन्ध दिलाते हैं, उन्हे सम्प्रतिराजा द्वारा बनवायी गयी प्रतिमा देखी ही क्या होगी ? अगर आचार्य निष्पक्ष होकर खोज करते तो जयपुर, आमेर, जैसलमेर, पाली आदि मे ही सम्प्रति कालीन मूर्तियों के उन्हे दर्शन हो जाते।

"बिना सकोच कहा जा सकता है कि सप्रति निर्मित मूर्तियाँ कही भी उपलब्ध नही हैं"—बिना प्रमाण ऐसा लिखने की आचार्य हस्तीमलजी जब धृष्टता और बेईमानी ही करते है तब तो उनको यह अवश्य खोज निकालना चाहिए कि सम्प्रति द्वारा निर्मित जिनप्रतिमा के रूप मे जो प्रतिमाएँ हजारो वर्षों से प्रसिद्धि पाई हुई आज विद्यमान हैं, वे प्रतिमाएँ किसके द्वारा निर्मित हैं ? आचार्य अगर यह कहे कि हम ऐसी खोज करने को बेकार नही बैठे हैं, तब तो वे झूठे इतिहासकार बन बैठें हैं, यह सिद्ध होता है।

अपरञ्च ऐतिहासिक तथ्यो से सप्रतिराजा द्वारा निर्मित प्रतिमा का प्रामाणिक सत्य सिद्ध होते हुए भी "तुष्यतु दर्जन न्यायेन" मान भी लिया जाए कि राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मूर्तिया भारतवर्ष के किसी भी भाग मे आज तक उपलब्ध नही हो पाई हैं, फिर भी जैनागम, वृत्ति, निर्युक्ति आदि शास्त्र क्या झूठे हो सकते हैं ? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि शास्त्र कथित शूक्ष्म तत्वो को हम देख-समझ न पाए इस से क्या शास्त्रो की प्रामाणिकता नष्ट हो सकती है ? अनतकाय के एक शरीर मे अनतजीवो की बात शास्त्र करते हैं, तो क्या उसके विषय मे भी आगम निरपेक्ष शका कुशका करके आलू का बडा, लहसुन की चटनी, और गाजर का हलुवा आदि अनन्तकाय [जमीकन्द] के भक्षण को क्या आचार्य एव स्थानकपथी उचित समझेंगे ? फिर तो आगम कथित एक भी बात श्रद्धा करने योग्य नही रहेगी।

जिनप्रतिमा के विषय मे पट्टावलिया आदि शास्त्रो के उपरात ध्वसावशेषो का ऐतिहासिक सत्य तथ्य होते हुए भी आचार्य अधेरे मे ही रहना पसन्द करते हैं। वे खड २, पृ० ४५६ पर लिखते हैं कि—

✲✲✲ श्वेत पाषाण की कोहनी के समीप गाठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ जैन समाज मे प्रसिद्ध रही हैं और उन सभी का सम्बन्ध राजा सप्रति से स्थापित किया जाता है। ऐसी प्रतिमाओ के अनेक स्थानो पर प्रतिष्ठापित होने का उल्लेख किया गया है। मेरी विनम्र सम्मति के अनुसार ये श्वेत पाषाण की प्रतिमाएँ सम्प्रति अथवा मौर्यकाल की तो क्या तदुत्तरवर्ती काल की भी नहीं कही जा सकती। ✲✲✲

मीमासा— श्वेतपाषाण की कोहनी के समीप गाठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ "जैन समाज" मे प्रसिद्ध रही हैं।" ऐसा आचार्य लिखते हैं तो जैनसमाज से उन्हें यहाँ क्या अभिप्रेत है ? क्योकि

मीमासा—उक्त कथनानुसार वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति आदि शास्त्रो का प्रामाणिक सहारा होते हुए भी एव प्राचीन मदिर, मूर्ति, शिलालेख आदि का तथ्य होते हुए भी आचार्य हस्तीमलजी सम्प्रदायवाद के व्यामोह मे मूलपथ से विचलित होकर मृषावाद का आश्रय खड २, पृ० ४५६ पर इस प्रकार करते हैं कि—

☼☼☼ जहाँ तक जैन मूर्ति-विधान एव उपलब्ध पुरातन अवशेषो का प्रश्न है, यह बिना किसी सकोच के कहा जा सकता है कि राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मदिर या मूर्तियाँ भारतवर्ष के किसी भी भाग मे आजतक उपलब्ध नहीं हो पाई हैं। ☼☼☼

मीमासा—अचार्य पदारूढ व्यक्ति का यह एक सफदे झूठ है। मूर्ति मे मूर्तिमान के दर्शन करने के ज्ञान से जो अनभिज्ञ हैं एवं जो मदिर मे जाना पाप समझते हैं और अपने अनुयायियो को मन्दिर मे नही जाने की सौगन्ध दिलाते हैं, उन्हे सम्प्रतिराजा द्वारा बनवायी गयी प्रतिमा देखी ही क्या होगी ? अगर आचार्य निष्पक्ष होकर खोज करते तो जयपुर, आमेर, जैसलमेर, पाली आदि मे ही सम्प्रति कालीन मूर्तियों के उन्हे दर्शन हो जाते।

"विना सकोच कहा जा सकता है कि सप्रति निर्मित मूर्तियाँ कही भी उपलब्ध नही हैं"—विना प्रमाण ऐसा लिखने की आचार्य हस्तीमलजी जब धृष्टता और बेईमानी ही करते हैं तब तो उनको यह अवश्य खोज निकालना चाहिए कि सम्प्रति द्वारा निर्मित जिनप्रतिमा के रूप मे जो प्रतिमाएँ हजारो वर्षो से प्रसिद्धि पाई हुई आज विद्यमान हैं, वे प्रतिमाएँ किसके द्वारा निर्मित हैं ? आचार्य अगर यह कहे कि हम ऐसी खोज करने को वेकार नही बैठे हैं, तव तो वे झूठे इतिहासकार बन बैठें हैं, यह सिद्ध होता है।

अपरञ्च ऐतिहासिक तथ्यो से सप्रतिराजा द्वारा निर्मित प्रतिमा का प्रामाणिक सत्य सिद्ध होते हुए भी "तुष्यतु दर्जन न्यायेन" मान भी लिया जाए कि राजा सम्प्रति द्वारा निर्मित मूर्तिया भारतवर्ष के किसी भी भाग मे आज तक उपलब्ध नही हो पाई हैं, फिर भी जैनागम, वृत्ति, निर्युक्ति आदि शास्त्र क्या झूठे हो सकते हैं ? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि शास्त्र कथित सूक्ष्म तत्वो को हम देख-समझ न पाए इस से क्या शास्त्रो की प्रामाणिकता नष्ट हो सकती है ? अनतकाय के एक शरीर मे अनतजीवो की बात शास्त्र करते हैं, तो क्या उसके विषय मे भी आगम निरपेक्ष शका कुशका करके आलू का बडा, लहसुन की चटनी, और गाजर का हलुवा आदि अनन्तकाय [जमीकन्द] के भक्षण को क्या आचार्य एव स्थानकपथी उचित समझेंगे ? फिर तो आगम कथित एक भी बात श्रद्धा करने योग्य नही रहेगी।

जिनप्रतिमा के विषय मे पट्टावलिया आदि शास्त्रो के उपरात ध्वसावशेषो का ऐतिहासिक सत्य तथ्य होते हुए भी आचार्य अधेरे मे ही रहना पसन्द करते हैं। वे खड २, पृ० ४५९ पर लिखते हैं कि—

✲ ✲ ✲ श्वेत पाषाण की कोहनी के समीप गाठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ जैन समाज मे प्रसिद्ध रही हैं और उन सभी का सम्बन्ध राजा सप्रत्ति से स्थापित्त किया जाता है। ऐसी प्रतिमाओ के अनेक स्थानो पर प्रतिष्ठापित होने का उल्लेख किया गया है। मेरी विनम्र सम्मति के अनुसार ये श्वेत पाषाण की प्रतिमाएँ सम्प्रति अथवा मौर्यकाल की तो क्या तदुत्तरवर्ती काल की भी नहीं कही जा सकती। ✲ ✲ ✲

मीमासा— श्वेतपाषाण की कोहनी के समीप गाठ के आकार के चिन्हवाली प्रतिमाएँ "जैन समाज" मे प्रसिद्ध रही हैं।" ऐसा आचार्य लिखते हैं तो जैनसमाज से उन्हे यहाँ क्या अभिप्रेत है ? क्योकि

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो जैन समाज प्रतिमा और प्रतिमापूजा मे विश्वास करते हैं और स्थानकपथी नही करते हैं, ऐसी दशा मे आचार्य हस्तीमलजी के "जैन समाज" ऐसा कथनानुसार क्या स्थानकपथी समाज स्वतः ही "जैनाभास" सिद्ध नही हो जाता है ?

"ऐसी प्रतिमा अनेक स्थानो पर प्रतिष्ठापित की गयी हैं" इस प्रकार का शास्त्रोक्त कथन होते हुए भी धृष्टता का अवलबन लेकर लिखना कि—"मेरी विनम्र सम्मति के अनुसार ये श्वेत पाषाण की प्रतिमाएँ सम्प्रति अथवा मौर्यकालिन तो क्या तदुत्तरवर्ती काल की भी नही कही जा सकती।" किन्तु आचार्य का ऐसा लिखना सर्वथा कपटपूर्ण है, क्योकि फिर ये प्रतिमाएँ कौनसे काल की है यह तो उनको बताना ही चाहिए एव आचार्य की नम्र सम्मति प्रमाणभूत आधार पर है या निराधार ? शास्त्र सापेक्ष है या निरपेक्ष ? आगमानुसार ही है या आगम विपरीत ? तत्त्वानुसारी है या तत्त्वविनाशक ? ये प्रश्न विचारणीय हैं। जैसे "व्याघ्री अपने बच्चे को सौम्य और अक्रूर मानती है" इसी प्रकार आचार्य की सम्मति अगर कल्पित मात्र है तो अकिंचित्कर है। शास्त्र मे ऐसी सम्मति को मिथ्याभिमान कहा है। ऐसी अप्रमाणिक मिथ्या सम्मति इतिहास की सच्चाई मे मूल्यहीन मानी गई है, क्योकि प्रामाणिकता की कसौटी पर ऐसी मनमानी सम्मति झूठी ही ठहरती है।

जिनप्रतिमा के विषय मे आचार्य हस्तीमलजी का द्वेष कितना है, इस विषय मे राजा सम्प्रति का एक ही दृष्टात बहुत कुछ प्रकाश डालता है।

[प्रकरण–२६]

ंदि ा ौर ि ंदिर

एक बार पूज्य आर्य श्री सुहस्ति महाराज अपने शिष्य समुदाय सहित अश्वशाला मे ठहरे। स्वाध्याय के अवसर पर साधुओ के मुंह से देवलोक स्थित नलिनी गुल्म विमान का वर्णन सुनकर अवति सुकुमाल को पूर्वजन्म का जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उसने देवलोक के नलिनी गुल्म विमान से यहाँ मनुष्य जन्म लिया था, ऐसा जानकर उसने आचार्य आर्य सुहस्तिजी के पास चारित्र लिया और रात्रि मे श्मशान मे ध्यानस्थ रहा। वहाँ लोमडी और इसके बच्चो ने उपसर्गकर श्री अवतिसुकुमाल मुनि को मरणान्त कष्ट दिया। समभाव और समाधि से मरण के बाद पुन वे उसी नलिनी गुल्म विमान मे उत्पन्न हुए। गुरु महाराज का उपदेश सुनकर माता और बत्तीस पत्निओ ने अपना शोक दूर किया और एक सगर्भा स्त्री को छोडकर सभी ने वैराग्य पूर्वक चारित्र ग्रहण किया। समय पाकर सगर्भा स्त्री को पुत्र जन्म हुआ जिसका नाम महाकाल था। जिसने बडे होकर अपने सासारिक पिता की स्मृति मे अवति सुकुमाल मुनि के अग्निसस्कार स्थान पर "अवति पार्श्वनाथ" का मदिर बनवाया। जो बाद मे "महाकाल मदिर" के नाम से महान तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध हुआ।

पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज द्वारा रचित "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष" नामक इतिहास मे यह भी सूचित किया है कि—

भगवान श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से २५० वर्ष बाद आचार्य श्री आर्य सुहस्ति महाराज द्वारा प्रतिष्ठित और श्री अवति-सुकुमाल मुनि की स्मृति मे उनके पुत्र द्वारा निर्मित श्री पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा "श्री अवति पार्श्वनाथ" के नाम से आज भी उज्जैन मे बिराजित हैं।

कालक्रम से अन्य धर्मियो द्वारा शिवलिंग स्थापित कर इस प्रतिमा को ढक दिया था। जिसको विक्रम सवत् प्रवर्त्तक राजा विक्रमादित्य के समय मे प्रभावक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी ने कल्याण मदिर स्तोत्र की रचना द्वारा पुन प्रगट किया था। उनके द्वारा रचित "कल्याण मदिर स्तोत्र" आज भी जैन समाज मे अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिस स्तोत्र के पीछे "अवति पार्श्वनाथ" की प्रतिमा का रहस्य छीपा हुआ है।

श्री अवति सुकुमाल के चरित्र मे 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" का उल्लेख पूर्वक खड २, पृ० ४६२ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

❋❋❋ आचार्य हेमचन्द्र द्वारा परिशिष्ट पर्व मे किये गये उल्लेख के अनुसार अवति सुकुमाल के पुत्र ने अपने पिता की स्मृति मे उनके मरण स्थल पर एक विशाल देवकुल का निर्माण करवाया जो आगे चलकर महाकाल के नाम से विख्यात हुआ।

[परिशिष्ट पर्व, सर्ग—११] ❋❋❋

मीमासा—प्राचीन, ज्ञानवन्त, धुरधर विद्वान् पूज्यपाद् कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य महाराज साहब को सिर्फ आचार्य हेमचन्द्र इतना अबहुमान सूचक शब्द प्रयोग आचार्य ने किया है जिसका हमे खेद है। अपरच "देवकुल" ऐसा क्लिष्ट और सदिग्ध प्रयोग

आचार्य द्वारा अनावश्यक किया गया है, प्रामाणिकता पूर्वक जिनमन्दिर ऐसा लिख देते तो क्या होता ?

यहा जिन मन्दिर के विषय मे "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" के रचयिता आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि महाराज का नाम देकर आचार्य ने स्वय को मन्दिर के मामले मे अलिप्त रखना चाहा है, चू कि स्थानकपथी भक्तगण उनसे चौक न उठे। किन्तु मदिर की बात पूज्यपाद हेमचन्द्राचार्य महाराज के नाम पर लिखकर भी आचार्य बच नही सकते, सत्य तो स्वीकारना ही चाहिए, क्योकि "त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र" को स्वय उन्होने ही प्रामाणिक ग्रथ बताया है। यथा—

☼☼☼ यह है आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा विरचित त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र का उल्लेख जो पिछली आठ शताब्दियो से भी अधिक समय से लोकप्रिय रहा है। [खड २, पृ० ५६] ☼☼☼

मीमासा—उक्त बातो से जिन प्रतिमा और जिन मदिर की प्रामाणिकता सिद्ध होते हुए भी आचार्य अंधकार मे रहना क्यो पसन्द करते हैं ? यह उनकी आचार्य पद की गरिमा के बिलकुल प्रतिकूल है।

पिछले चार पाच सौ वर्षों मे जितना भी मूर्ति का विरोध हुआ है, उसमे इस तथ्य की ओर ध्यान नही दिया गया कि मूर्ति-मूर्तिमान का स्मारक है, न कि जिस धातु की बनी है उसका। स्वय के फोटो बडे चाव से खिचवाने वाले यदि वे अपने अन्दर झाँककर एक बार देखें तो सब कुछ स्पष्ट हो जाएगा।

—डा० श्री हुकमचन्द भारिल्ल

[प्रकरण–३०]

पूज ी द्धि णि ा

भगवान श्री महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात करीब ६८० वर्ष बाद वल्लभीपुर मे जिन महापुरुष ने श्रमणो को इकट्ठा करके आगम वाचना करवायी थी और जैनागमो को तालपत्रो पर लिखवाकर सुरक्षित करवाया एव हमारे तक पहुँचाया उन महोपकारी श्री देवर्द्धि-गणि क्षमाश्रमण का जीवन कवन इस प्रकार है।

देवर्द्धिगणि पूर्वजन्म मे हरिणैगमेषी देव थे। आकाशगामिनी विद्याधारक चारणमुनि से उसने ऐसी बात जानी कि—"वह दुर्लभ बोधि है किन्तु वे भगवान श्री महावीर देव के शासन की महासेवा जैनागमो को पुस्तकारूढ करवाकर करेंगे।" अपने भावि जीवन का वृत्तान्त सुनकर हरिणैगमेषी देव ने ऐसी व्यवस्था की कि उसकी मौत के बाद, उसके स्थान पर आने वाला उत्तरवर्ती (अन्य) हरिणैगमेषी देव इसको बोधिलाभ की प्राप्ति करावे। नवोत्पन्न हरिणैगमेषी देव ने देवर्द्धि को बोधिलाभ की प्राप्ति हेतु अनेको प्रयास किये, किन्तु वह असफल रहा। शिकार खेलने का व्यसनी देवर्द्धि एक बार शिकार खेलते समय खड्डे मे गिर गया। देव ने इसे इस प्रतिज्ञा से बचाया कि वह चारित्र ले। बाद मे देवर्द्धि ने बोधिलाभ पूर्वक चारित्र लिया। आपके सुन्दर चारित्र के पालन से प्रभावित होकर कपर्दियक्ष, चक्रेश्वरी देवी तथा गोमुख यक्ष आपको प्रत्यक्ष थे और आपकी सेवा हेतु सदा तत्पर रहते थे। आपने

वल्लभीपुर मे श्रमण सघ को इकट्ठा करवाकर आगमिक वाचना करवायी थी और जैनागमो एव आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य को चिर स्थायी बनाकर अपार उपकार किया था।

खड २, पृ० ६७६ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते है कि—

✲✲✲ आप पूर्व जन्म मे हरिणंगमेषी देव थे। नवोत्पन्न हरिणंगमेषी देव देवर्द्धि को सन्मार्ग पर लाने हेतु विभिन्न उपायो से समझाने का प्रयास करने लगा। ✲✲✲

✲✲✲ उस समय सहसा देवर्द्धि के कानो मे ये शब्द पडे— "अब भी समझ जाओ, अन्यथा तेरी मृत्यु तेरे सन्मुख खडी है।" भय विह्वल देवर्द्धि ने गिडगिडाकर कहा—"जैसे भी हो सके मुझे बचाओ, तुम जैसा कहोगे वही मैं करने के लिये तैयार हूँ। ✲✲✲

✲✲✲ देव ने तत्काल उसे उठाकर आचार्य लोहित्य सूरि के पास पहुँचा दिया और देवर्द्धि भी आचार्य लोहित्य का उपदेश सुनकर उनके पास श्रमण धर्म में दीक्षित हो गये। ✲✲✲

✲✲✲ बाद मे वीर निर्वाण पश्चात् ९८० साल बाद आपने वल्लभीपुर मे आगम वाचना करके शास्त्र पुस्तकारूढ करवाके वर्णनातीत उपकार किया। ✲✲✲

मीमासा—यहा तक पूज्य देवर्द्धि गणि के विषय मे सही सही लिखने वाले आचार्य ने जैसे ही शासन रक्षक देव-देवियाँ एव यक्ष आदि की बात आयी कि वहाँ उन्होने झूठ का सहारा ले लिया। खड २, पृ० ६७७ पर आचार्य लिखते हैं कि—

✲✲✲ श्रद्धालुओ द्वारा परम्परा से यह मान्यता अभिव्यक्त की जा रही है कि आपके तप-सयम की विशिष्ट साधना एव आराधना से

कपर्दियक्ष, चक्रेश्वरी देवी तथा गोमुख यक्ष आपकी सेवा मे उपस्थित रहते थे। ☼ ☼ ☼

मीमासा—आपने दिल मे रहा हुआ पाप आचार्य ने "श्रद्धालुओ द्वारा परम्परा से यह मान्यता अभिव्यक्त की जा रही है"—इन शब्दो मे प्रकाशित किया है, क्योकि यहा श्रद्धालु और परम्परा जैसे घटिया शब्दो की आवश्यकता ही क्या थी ? आचार्य ने यहा 'श्रद्धालुओ' शब्द का तात्पर्यार्थ नही लिखा है किन्तु आचार्य का तात्पर्य ऐसे लोगो से हो सकता है जो कि किंवदन्ती या अंधश्रद्धा मे विश्वास रखते हो, परन्तु "श्रद्धालुओ" ऐसा शब्द लिखना अनुचित इसलिये है कि तो क्या आचार्य स्वय 'अश्रद्धालु' हैं ?

तथा 'परम्परा से' ऐसा लिखने के पीछे आचार्य की जघन्य भावना यह रही होगी कि परम्परा से यानी रूढि से यानी गतानुगतिकता से श्रद्धालुभक्त ऐसी भावना व्यक्त करते हैं यानी स्वय आचार्य का इसमे अविश्वास है।

आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य मे कहा है साथ साथ आचार्य ने खड २, पृ० ६७६ पर लिखा है, किन्तु यहाँ 'परम्परा से' एव 'श्रद्धालु-भक्त' ये दो शब्द लिखना उनका अनुचित ही है। पूज्य देवर्द्धि गणि की सेवा मे कपर्दियक्ष, चक्रेश्वरी देवी तथा गौमुखयक्ष रहते थे, तो इस बात मे आचार्य को क्या नाराजी है ? "देवा वि त नमसति" इस आगम वचनानुसार सयमी पुरुषो को देव नमस्कार करते हैं यह सत्य तथ्य होते हुए भी 'परम्परा से" "श्रद्धालु" आदि शब्दो के लिखने की आवश्यकता ही क्या है ? आगमिक तथ्य होते हुए भी देव-देवियो के तथ्य का आचार्य अपलाप क्यो करते हैं ?

इतने महान उपकारक आगम-सरक्षक श्री देवर्द्धिगणि महाराज के विषय मे आचार्य हस्तीमलजी प्रशसा के दो शब्द तो न लिख सके किन्तु उपकार का बदला 'परम्परा' और 'श्रद्धालु' जैसे घटिया शब्द लिखकर अपकार से चुकाया है, जिसका हमे खेद है।

जिसके दिल मे सूत्राभ्यास द्वारा सद्बोध का प्रादुर्भाव होता है, उसके दिल मे ही आगम सूत्र की तात्त्विक स्पर्शना होती है।

—न्यायविशारद पूज्य यशोविजयजी उपाध्यायजी

[प्रकरण—३१]

रा ` ं ा ी टीले ी ु ।

इतिहास की सत्यता के लिये हस्तलिखित प्राचीन ग्रथ की तरह प्राचीन शिलालेख, सिक्के, मूर्तियाँ, ताम्रपत्र, ध्वसावशेष एव पट्ट आदि को भी प्रामाणिक सामग्री माना गया है।

जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये एव आगम शास्त्रो की सच्चाई को सिद्ध करने वाली जमीन मे से निकाली हुई प्राचीन जिन प्रतिमा और प्रतिमा की चौकियो पर लिखे हुए लेख प्रामाणिक पुरावा (सबूद) है। तक्षशिला के पास 'मोहन-जो-दरो' मे प्राचीन जिन प्रतिमा निकली है। उडीसा मे उदयगिरि तथा खडगिरि पर्वत पर खुदाई करने से जिनमूर्तियाँ आदि मिली हैं। ऐसे तो सैकडो उदाहरण हैं, जहाँ जमीन मे से प्राचीन जिन प्रतिमा आदि मिली हो। इन सबसे जिन मदिर, जिन प्रतिमा एव प्रतिमा पूजा प्राचीन काल मे भी थी इस तथ्य पर विशद् प्रकाश पडता है। आगमशास्त्र और आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि भी जिन मदिर, जिन प्रतिमा एव जिन पूजा के तथ्यो के समर्थक रहे हैं। ऐसी दशा मे अगर स्थानकपथी स्वय को प्रामाणिक करते हैं तो उन्हे उक्त सत्य को स्वीकार करना ही चाहिए।

मथुरा के ककाली नामक एक प्राचीन टीले की खुदाई भारत सरकार द्वारा करने पर सैकडो प्राचीन मूर्तियाँ, सिक्के, चरण पादुकाएँ,

पंबासन एव एक स्तूप आदि मिले हैं, उनमे करीब ११० की सख्या में प्राचीन शिलालेख और अनेक मूर्तिया एव श्री सुपार्श्वनाथ का प्राचीन स्तूप जैनो से सम्बन्धित है ऐसा इतिहासज्ञो का निश्चयात्मक रूप से कहना है। इन मूर्तियो के शिलालेखो मे मौर्यकाल, गुप्तकाल और कुशाणवशी राजाओ का समय २००० या २२०० वर्ष पूर्व का कहा जा सकता है। अत इन अवशेषो को भी इतना ही प्राचीन कहना चाहिए। हमारे जैन पूर्वाचार्यों ने उपकार करके इन राजाओ को जैनधर्म प्रेमी बनाया था और जैन शासनोन्नति हेतु इनसे जैन मदिर बनवाकर श्री अरिहंत, सिद्ध आदि की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करवायी थी। इन सब तथ्यो से इतना तो अवश्य स्पष्ट होता ही है कि नय दृष्टि का अभ्यासी एक तटस्थ व्यक्ति कभी भी जिनप्रतिमादि विषयो का विरोध या अनादर नहीं कर सकता है।

"जैन धर्म का मौलिक इतिहास" खड २, टिप्पणी पृ० ३२ पर आचार्य हस्तीमलजी लिखते हैं कि—

❂ ❂ ❂ मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई का कार्य सर्व प्रथम ई० सन् १८७१ में जनरल कनिंघम के तत्त्वावधान मे, दूसरी बार सन् १८८८ से १८९१ मे डा० फ्यूरर के तत्त्वावधान मे तथा तीसरी बार प० राधाकृष्ण के तत्त्वावधान मे करवाया गया। इन तीनों खुदाईयो मे जैन इतिहास की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण विपुल सामग्री उपलब्ध हुई। वह सामग्री आज से १८९१ से लेकर १७९८ वर्ष तक की प्राचीन एव प्रामाणिक होने के कारण बड़ी चि तिय है। ❂ ❂ ❂

मीमासा—ये सामग्री "इतिहास की दृष्टि से बडी महत्त्वपूर्ण है" ऐसा आचार्य का लिखना धोखा मात्र ही है। क्योकि इन खुदाई मे से निकले जिनप्रतिमादि प्राचीन अवशेष सिर्फ इतिहास की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नही है, किन्तु आत्मा मे भरे पडे मिथ्यात्व अंधकार को दूर

करने और सत्य का प्रकाश करने की दृष्टि से भी बडी महत्वपूर्ण है, इस तथ्य को आचार्य क्यो भूल जाते हैं ? तथा "यह सामग्री प्राचीन एव प्रामाणिक होने के कारण बडी विश्वसनीय है।" ऐसा लिखने मे भी वे कपट ही कर रहे हैं क्योकि आगम एव आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य एव टीकादि ग्रन्थ जिनप्रतिमापूजा की पुष्टि करते हैं और ध्वसावशेष से इस तथ्य की सत्यता मे चार चाद लग गये हैं, फिर भी स्थानकपथी और आचार्य हस्तीमलजी इस तथ्य की ओर आँखें बन्द कर बैठे हुए हैं सत्य कहा है कि उल्लू को प्रकाश भी बुरा लगता है। जैन इतिहास की सत्यता का सुन्दरतम वर्णन तो एक अभव्य व्यक्ति भी कर सकता है किन्तु सच्ची श्रद्धा पूर्वक अपने दिल मे सत्य की स्थापना नही करने के कारण उनकी ऐसी सत्य प्ररूपणा की कीमत फटी कौडी की भी नही रह जाती है, क्या इस तथ्य से आचार्य अनभिज्ञ नही हैं ? इतिहास लेखन द्वारा सत्य गवेषणा करके जिनप्रतिमा और जिनमदिरादि का सत्य तथ्य यदि आचार्य अपने दिल मे श्रद्धा और भक्ति पूर्वक स्थापन नही करेगे तो उनका इतिहास का लेखन उनके लिये आत्मवचना ही होगा, क्योकि अश्रद्धा पूर्वक की गई सब सत् चेष्टाएँ भी जैनागमो मे ससार वर्धक ही मानी गई हैं।

ककाली टीले मे से निकले हुए प्राचीन अवशेषो से आचार्य हस्तीमलजी ने कल्पसूत्र एव नन्दीसूत्र की स्थविरावलियो को प्रामाणिक और विश्वसनीय सिद्ध किया है, किन्तु मूर्तिमान्यता के विषय मे एक शब्द भी लिखना उन्हे अभिष्ट नही है, जिसका हमे खेद है। एक आचार्य पदारूढ इतिहासकार प्रामाणिकता और तटस्थता की प्रतिज्ञा करने पर भी इतनी धृष्टता करे क्या यह खेद की बात नही है ?

खड २, पृ० ३२ पर टिप्पणी नोध मे आचार्य की कपट वचन रचना इस प्रकार है—

विश्ववंद्य भगवान श्री महावीर स्वामी

ककाल टोला, मथुरा से प्राप्त ईसा की १–२ शताब्दी
वर्तमान मे मथुरा म्यूजियम मे है ।

※ ※ ※ मथुरा के ककाली टीले की खुदाई से निकले ई० सन् ८३ से १७६ तक के आयोग पट्टो, ध्वजस्तम्भो, तोरणो, हरिणैगमेषी देव की मूर्ति, सरस्वती की मूर्ति, सर्वतोभद्र प्रतिमाओ, प्रतिमा पट्टो एव "मूर्तियो की चौकियो" पर उट्ट कित शिलालेखो से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वस्तुत ये दोनो स्थविरावलिया अति प्राचीन ही नहीं, प्रामाणिक भी हैं। ※ ※ ※

मीमासा—आचार्य का हरिणैगमेषी देव की मूर्ति, सरस्वती की मूर्ति ऐसा लिखने के बाद "मूर्तियो की चौकियो" ऐसा लिखना मायाचार ही है, क्योकि परिशेष न्याय से "मूर्तियो की चौकियो" का अर्थ तो 'तीर्थंकर भगवान की मूर्तियो की चौकियो" ही होता है, जो छलकपट पूर्वक न लिखकर आचार्य ने पक्षपातपूर्ण वर्तन किया है। फिर खड २, पृ० ३९ पर टिप्पणी नोध मे—

※ ※ ※ हमारी चेष्टा पक्षपात विहीन एव केवल यह रही है कि वस्तुस्थिति प्रकाश मे लायी जाए। ※ ※ ※

मीमासा—ऐसा लिखना धोखेबाजी ही है। क्योकि हरिणैगमेषी देव की मूर्ति, सरस्वती की मूर्ति आदि लिखना और तीर्थंकर की मूर्ति लिखने का जहाँ अवसर आया वहाँ "तीर्थंकर भगवान की मूर्तियो की चौकियाँ" ऐसा न लिखकर सिर्फ "मूर्तियो की चौकियाँ" ऐसा लिखना क्या अनूठा मिथ्याचार नही है ?

भगवान का गर्भापहार बालक वर्धमान द्वारा सुमेरु कम्पन आदि के विषय मे अन्यो को सत्य वस्तुस्थिति समझाने का प्रयास आचार्य ने किया है, ऐसा प्रयास जिन प्रतिमा के विषय मे क्यो नही किया ? श्री महावीर स्वामी के विषय मे 'मासभक्षण' का भ्रम दूर करने हेतु आचार्य ने आगम, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य वृत्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकादि तथा कोष एव व्याकरण द्वारा स्पष्टीकरण किया है। वैसा ही प्रयास आगमशास्त्र, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य,

आगमो पर रचित वृत्ति, चूर्णि, भाष्य टीकादि साहित्य एव व्याकरण और शब्दकोष तथा प्राचीन प्रतिमा पर उट्टंकित शिलालेखो आदि सामग्री आदि का सहारा लेकर जिनप्रतिमा, जिनमदिर और जिनपूजा आदि विषयो मे गवेषणा और तथ्य का अन्वेषण करना अत्यन्त आवश्यक था जिस पर आचार्य ने पर्दा ही डाल दिया, इससे यह सिद्ध होता है कि आचार्य को अधकार ही पसन्द है।

आचार्य का जैनधर्म विषयक मूर्तियो की चौकियो पर उट्टंकित लेखो से श्रीनन्दीसूत्र और श्री कल्पसूत्र की स्थविरावलियो को प्रमाणित करना और स्वय मूर्तियो को प्रमाणित नही करना यह अर्ध-जरतीय न्याय सर्वथा अनुचित ही माना जाएगा।

निक्खमण नाण निव्वाण, जम्म भूमीउ वदई जिणाण ॥

—जिस भूमि से तीर्थंकर भगवान ने जन्म लिया हो, दीक्षा ली हो, केवलज्ञान पाया हो एव निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया हो, उस पवित्र कल्याणक भूमि की (जैनियो को) वदना-स्पर्शना करनी चाहिए।

—आगमेतर जैन साहित्य मे सबसे प्राचीन ग्रन्थ
श्री उपदेशमाला [श्लोक—२३६]

[प्रकरण-३२]

ा र ौर ़ ा ंिर ो

पूज्य सिद्धसेन सूरिजी ने आगमिक शास्त्रो को प्राकृत भाषा मे से विद्वद्भोग्य सस्कृत भाषा मे करने के विचार मात्र को गुरु के आगे वाणी द्वारा प्रगट करने पर गुरु ने उन्हे पाराचित प्रायश्चित दिया था। क्योकि सर्वज्ञ वचनो पर एव सर्वज्ञो की एक भी क्रिया पर अश्रद्धा प्रगट करना महा अपराध है। सर्वज्ञो ने प्राकृत भाषा मे जो वाणी कही है वह आबाल गोपाल के हित के लिये ही कही है, फिर भी उस वाणी को पडित भोग्य सस्कृत भाषा मे परिवर्तन करने का स्वतन्त्र, जिनाज्ञा-निरपेक्ष विचार मात्र प्रगट करने पर धुरधर विद्वान श्री सिद्धसेनसूरि दिवाकर को पाराचित प्रायश्चित गुरु ने दिया था। इस प्रायश्चित मे बारह साल तक वेष छिपाकर रहना होता है और अपने ज्ञानादि गुणो से किसी राजा आदि को जैनधर्म मे प्रतिबोध करने पर इसकी समाप्ति होती है।

पाराचित प्रायश्चित वहन करने के काल मे पूज्य सिद्धसेन-सूरिजी ने राजा विक्रम को प्रतिबोधित किया था। इस विषय मे कथानक इस प्रकार है।

गुप्तवेष मे पाराचित प्रायश्चित वहन करते करते सूरिजी एक बार शिवमन्दिर मे ठहरे। पुजारी के निषेध करने पर भी आचार्य श्री सिद्धसेनजी शिवलिंग के सामने पैर करके सो गये। राजा ।

को बुलाया गया। उस समय श्री सिद्धसेनसूरिजी शिवलिंग के सामने पैर किये ही भगवान की स्तुति बोलने लगे। वे कुछ ही श्लोक बोल पाये थे कि शिवलिंग फटा और उसमे से अद्भुत तेज के साथ श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रगट हुई थी। जिससे राजा विक्रम भी पूज्य सूरिजी की अपार विद्वत्ता से प्रभावित होकर जैनधर्मी बन गया था। भगवान की स्तुति स्वरूप इस स्तोत्र का नाम "कल्याण मन्दिर स्तोत्र" है। जो आज भी जैन समाज मे सुप्रसिद्ध है।

आगम एव आगमेतर प्राचीन शास्त्र लिखित बातो को आमूलचूल बदलने पर भी ये बातें आधुनिक चिंतको के मन मे भायेंगी या नही यह विचारणीय प्रश्न है, फिर भी आचार्य हस्तीमलजी जैनागमो की बातो को बदलने के समर्थक रहे हैं, क्योकि खड २, पृ० ३८-३९ प्राक्कथन मे वे लिखते हैं कि—

☼☼☼ इस प्रकार बहुत सी चमत्कारिक रूप से चित्रित घटनाओ को भी इस ग्रन्थ मे समाविष्ट नहीं किया गया है। मध्ययुगीन अनेक विद्वान ग्रन्थकारो ने सिद्धसेन प्रभृति कतिपय प्रभावक आचार्यों के जीवन चरित्र का आलेखन करते हुए उनके जीवन की कुछ ऐसी चमत्कार पूर्ण घटनाओ का उल्लेख किया है, जिन पर आज के युग के अधिकाश चिंतक किसी भी दशा मे विश्वास करने को उद्यत नहीं होते। ☼☼☼

मीमासा—आधुनिक चिंतको के पक्षधर बनकर आचार्य हस्तीमलजी ने पूर्वाचार्यों को जो कि पचमहाव्रत धारी और सत्य प्रतिज्ञ थे उनको झूठा करने की बगावत की है और आधुनिक चिन्तको की तुष्टिकरण के लिये सुधारवादी विषैला दृष्टिकोण अपनाया है, फिर भी खड २, पृ० २६ प्राक्कथन मे आचार्य लिखते हैं कि—

✠✠✠ यदि प्रत्येक जिन शासनानुयायी मे इस प्रकार की जागरूकता उत्पन्न हो जाए तो आज जैनागमो के सम्बन्ध मे तथाकथित सुधारवादियो द्वारा जो विषैला प्रचार किया जा रहा है, उसके कुप्रभाव और कुप्रवाह को रोका जा सकता है। ✠✠✠

मीमासा—हमारा भी यही कहना है कि तथा कथित सुधारवादी आचार्य स्वय ही हैं, जिन्होने नामधारी समिति रचकर, स्थानकपथी स्वमान्यतानुसार "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" लिखकर जैन धर्म के इतिहास के नाम पर काला कलक लगाया है और जैन समाज मे भ्रम एव विघटन फैलाने का असद् कार्य किया है। उसके कुप्रभाव और कुप्रवाह को रोकने हेतु ही गुरुकृपा से हमने यह मीमासा रचकर जागरूकता दिखाने का प्रयत्न किया है। जैनागमो, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य, पूर्वाचार्यों के कथनो और जैनधर्म विषयक प्राप्त प्राचीन शिलालेखो, मूर्तियो आदि ध्वसावशेष पर जिनको विश्वास हो उन जिन शासनानुयायियो से हमारा निवेदन है कि वे तथाकथित सुधारवादियो की प्रवृत्ति से सतर्क रहे।

स्थानकपथ के कर्णधार आचार्य हस्तीमलजी ने पट्टावली प्रबन्ध सग्रह जैनधर्म का मौलिक इतिहास, सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तरी, जैन आचार्य चरितावली आदि किताबें लिखकर स्वार्थवश या और भी किसी कारणवश जैन समाज मे द्वेष विष फैलाया है। हमने इस विषय मे यत् किंचित् प्रयास किया है, लेकिन इस विषय मे शास्त्रमर्मज्ञो को अधिक प्रयास करना चाहिए। अन्यथा ऐसे कल्पित इतिहास आदि विषैले साहित्य का प्रचार रुकना असभव ही है।

"सुधारवादी आधुनिक चितको को नही जचे" इसका बहाना बाजी कर आचार्य कह रहे हैं कि श्री सिद्धसेन सूरिजी आदि का चरित्र हमने इस इतिहास मे नही दिया है, किन्तु यह सर्वथा गलत है, इसका

मुख्य कारण जिन प्रतिमा विरोध ही है अन्यथा श्री मानतुंगसूरिजी के विषय मे भी श्री सिद्धसेनसूरिजी के सदृश ही चमत्कारिक घटना घटी है, जिसका वर्णन खड २, पृ० ६४६ पर आचार्य स्वय ने अपनी ओर से ही किया है। यथा—

✲✲✲ कमरो के द्वार स्वत ही खुल गये, आचार्य मानतुंग के सभी बधन कट गये। ✲✲✲

✲✲✲ उनके द्वारा निर्मित भक्तामर स्तोत्र आज भी जैन समाज मे बडी ही श्रद्धा-भक्ति के साथ घर घर मे गाया जाता है। ✲✲✲

आचार्य श्री मानतुंग सूरिजी को ४४ कमरो मे ४४ बेडियो से जकड कर बन्द करना और एक एक श्लोक के प्रभाव से एक एक बेडी का टूटना और कमरे के द्वार स्वत ही खुल जाना क्या इसको चमत्कारिक घटना नही कह सकते ? क्या तथाकथित आधुनिक चिंतक इस पर विश्वास करेंगे ? आचार्य का छल कपट तो देखो कि श्री आदिनाथ भगवान के भक्तामर स्तोत्र के विषय मे श्री मानतुंगसूरिजी की चमत्कार पूर्ण घटना का अपनी ही ओर से उल्लेख करते हैं, जब कि श्री पार्श्वनाथ भगवान के "कल्याण मदिर स्तोत्र" के विषय मे श्री सिद्धसेनसूरिजी की चमत्कार पूर्ण घटना मे—शिवलिंग फटना और पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा निकलनी, यह बात खड २, पृ० ५२८ पर आचार्य ने कतिपय कथाग्रन्थो के नाम से लिखकर अप्रमाणिकता की है। यथा—

✲✲✲ राजा द्वारा बारबार आग्रह किये जाने पर सिद्धसेन ने महादेव के सच्चे स्वरूप की स्तुति प्रारम्भ की। कतिपय कथाग्रन्थों मे बताया गया है कि सिद्धसेन, स्तुति के कुछ ही श्लोक का उच्चारण कर पाये थे कि अद्भुत तेज के साथ वहां भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट हो गई।

राजा विक्रमादित्य अचिन्त्य आत्म शक्ति के अनेक चमत्कारो को देखकर सिद्धसेन के परम भक्त बन गये। ✲✲✲

मीमासा—आचार्य एक ओर लिखते हैं कि अचिन्त्य आत्म-शक्ति के चमत्कार ऐसे होते हैं, किन्तु प्रतिमा द्वेष के कारण दूसरी ओर वे लिखते हैं कि आधुनिक चिंतक इस पर विश्वास नही करते है। लगता है मन के अनिश्चित एव चल विचलित परिणाम के कारण ही ऐसी परस्पर विरोध पूर्ण बातें आचार्य ने लिखी है। सच ही कहा है—"विवेक भ्रष्ट का पतन अनेकशः होता है।"

पापभीरु एक सामान्य जन भूल से भी झूठ बोलने से कांपता है, मगर आचार्य होकर भी जानबूझ कर झूठ बोले तो उसकी दीक्षा निरर्थक है।

—आगमेतर सबसे प्राचीन ग्रन्थ उपदेशमाला [श्लोक–५०८]

[प्रकरण–३३]

[illegible] में मूर्तिपू[illegible] [illegible]ौर [illegible]
[illegible]ले

जिनागम और जिनप्रतिमा–मदिर ये दो ही श्रेष्ठ साधन जैनधर्म की सस्कृति के प्रचार प्रसार के आधार रहे हैं। इन दोनो श्रेष्ठ मार्गों से ही पूर्वाचार्यों ने जैनधर्म की सस्कृति को आजतक टिकाया है। भूमि की खुदाई द्वारा मिले प्राचीन ध्वसावशेष मूर्तिया और शिलालेखों ने जैनागम और आगमेतर प्राचीन जैन शास्त्रो कथित जिन मन्दिर और प्रतिमापूजा के सत्य तथ्य को चार चाद लगा दिये हैं। निष्पक्ष इतिहासकार और पुरातत्त्वविद् इन ऐतिहासिक तथ्यो से पूर्णत सहमत है कि जिनमूर्तिया, पादुका एव स्तूपादि भगवान महावीर से भी बहुत पहिले पूजे जाते थे।

मथुरा के ककाली टीले मे से मिले प्राचीन ध्वसावशेष से यह तथ्य भली भाति सिद्ध हो चुका है कि महान सम्राट अशोक (अपरनाम सम्प्रति), बिन्दुसार और चन्द्रगुप्त आदि राजा भी जिन-प्रतिमा आदि मे विश्वास करते थे। खड २, पृ० ४५१ पर आचार्य लिखते हैं कि—

❋❋❋ . जिन शिलालेखो को आजतक अशोक के शिलालेखों के नाम से बौद्धधर्म से सम्बन्धित शिलालेख समझा जाता रहा था,

उनमे कतिपय शिलालेख सम्प्रति, बिन्दुसार और चन्द्रगुप्त के एव जैनधर्म से सम्बन्धित भी हैं। ✲✲✲

मीमासा—ध्वसावशेष के रूप मे मिले प्राचीन शिलालेखो, जिनमूर्तिया और जिनमूर्ति पर उट्टंकित शिलालेखो से इस तथ्य की भलीभाति पुष्टि होती है कि पूर्वाचार्यों ने इन राजा महाराजाओ को प्रतिबोध करके जैन सस्कृति के प्रचार प्रसार हेतु आगम कथित मार्ग से जिनमन्दिरो का निर्माण करवाया था एव उनमे तीर्थंकर परमात्मा की मूर्तियो की प्रतिष्ठा करवायी थी तथा इनके द्वारा जैनधर्म को लोकहृदय मे आजतक सुरक्षित रखा है।

जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर के विरोध के कारण ही ध्वसावशेष के विषय मे आचार्य अपनी कलम चोरी-चोरी चला रहे है, उनकी सावधानी का यही कारण है कि कही उनके हाथो प्रतिमा की सत्यता जाहिर न होने पाये। किन्तु एक सच्चा इतिहासकार सच्चे तथ्यो पर कभी भी अभिनिवेश या दुराग्रह नही रख सकता। जैनागम तथा आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य एव ऐतिहासिक शिलालेखो आदि के तथ्य होते हुए भी मूर्तिपूजा जैसे विषय को विवादास्पद बनाकर इनके ऐतिहासिक तथ्यो से इन्कार करना सूर्य के प्रकाश को हाथ से रोकने सदृश बालिश प्रयास मात्र है और अपने अनुगामियो को गलत और अप्रमाणिक मार्ग पर भटकाये रखने का घृणास्पद कृत्य भी है।

जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर के विषय मे पूर्वग्रह ग्रसित मानस के कारण खड २, पृ० ४५१ पर आचार्य कैसी अस्पष्ट, गोल-मोल एव हास्यास्पद बात लिखते हैं कि—

✲✲✲ सिंह का सम्बन्ध बुद्ध के साथ उतना सगत नहीं बैठता जितना कि भगवान् महावीर के साथ। भगवान महावीर का चिन्ह (लाछन) सिंह था और केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् भगवान महावीर के साथ-साथ

सिंह का चिन्ह भी चतुर्मुखी दृष्टिगोचर होने लगा था। सिंहचतुष्टय पर धर्म-चक्र इस बात का प्रतीक है कि जिस समय तीर्थंकर विहार करते हैं, उस समय धर्मचक्र नभमण्डल मे उनके आगे आगे चलता है। इस प्रकार के अनेक गहन तथ्य हैं, जिनके सम्बन्ध मे गहन शोध की आवश्यकता है। ☼☼☼

मीमासा—आचार्य हस्तीमलजी ने उक्त वात बौद्धधर्मचक्र और चतुर्मुख सिंहाकृति वाले सारनाथ का स्तम्भ के विषय मे कही है। किन्तु समवसरण मे भगवान का चतुर्मुखी दिखना और तीनो ओर देवो द्वारा भगवान के शरीर प्रमाण–प्रतिकृति यानी प्रतिमा की स्थापना करना आदि विषय में स्वमान्यता विरोध के कारण विशद स्पष्टीकरण वे नही करपाये हैं जो खेद का विषय है। "इस प्रकार के अनेक गहन तथ्य हैं, जिनके सम्बन्ध मे गहन शोध की आवश्यकता है" आचार्य का ऐसा लिखना अनुचित है क्योकि घोर परिश्रमी (!) और वस्तु के अन्त स्तल तक पहुँचने की प्रज्ञाधारक (!) आचार्य स्वय इस प्रकार के तथ्यो पर गहन शोध क्यो नही करते हैं?

आगमसूत्रो एव आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य मे भी जिनमन्दिर, मूर्तिपूजा का वर्णन आता है। पुरातन अवशेष विशेष भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। आबू, राणकपुर, गिरनारजी शत्रुजय, कदम्बगिरि, सम्मेतशिखरजी, पावापुरी, राजगिरि, केसरियाजी, तारगाजी आदि तीर्थों पर पूर्वाचार्यों के आगमानुसारी कथन पर ही जिनेश्वर भगवान के भक्तो ने विशाल जिन मदिर बनवाये है और मदिर मे जिन मूर्तियो की उन आचार्यो द्वारा प्रतिष्ठा करवा कर वे जैन श्रावको जिन मूर्ति से मूर्तिमान अरिहत का वदन-पूजन-सत्कार-सम्मान कर कृतार्थ हो रहे हैं। एकान्तवादी दृष्टि के कारण ही खड १, पृ० ४२३ पर आचार्य विशाल जिन मन्दिरो को मात्र कलाकृति के ही प्रतीक कहते हैं, जो अन्यायपूर्ण है। यथा—

☼☼☼ भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति से ओत-प्रोत अनेक महात्माओ एव विद्वानों द्वारा रचित प्रभु पार्श्वनाथ की महिमा से पूर्ण कई महाकाव्य, काव्य, चरित्र, अगणित स्तोत्र और देश के विभिन्न भागो मे "भव्य कलाकृतियो के प्रतीक" विशाल मदिरो का बाहुल्य, ये सब इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं कि भगवान पार्श्वनाथ के प्रति धर्मनिष्ठ मानव समाज पीढियो से कृतज्ञ और श्रद्धावनत है। ☼☼☼

मीमासा—विशाल जिन मन्दिरो को मात्र भव्यकला कृतियो के प्रतीक कहना आचार्य की बहुत गहरी गलती है। ये मदिर भगवान को प्रतिदिन वदन-पूजन-सत्कार-सन्मान करके उनके प्रति कृतज्ञता एव श्रद्धा का भाव प्रगट करने हेतु हैं। मन्दिरो को "भव्य कलाकृतियो के प्रतीक" कहने की अपनी धुन मे आचार्य यह भूल गये कि फिर तो पूर्वाचार्यों द्वारा रचित स्तोत्र, भजन, स्तवन, चरित्रग्रन्थो आदि भव्य रचनाओ को भी वाणीविलास या काव्यविनोद हेतु ही पूर्वाचार्यों ने रचा है, ऐसा अनुचित मानने की भी आपत्ति आजायगी। जिनमन्दिर और स्तोत्र आदि साहित्य तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति, उपकारी के उपकार के बदले मे कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु और श्रद्धा तथा ज्ञान प्राप्ति हेतु एव जिनेश्वर देव को नित्य वदन पूजन, सत्कार सम्मान हेतु है, यह बात आचार्य को भूलना नही चाहिए।

प्रभु पार्श्वनाथ की भक्ति के विषय मे आचार्य खड १, पृ० ५२३ पर लिखते हैं कि—

☼☼☼ जैन साहित्य के अन्तर्गत स्तुति-स्तोत्र और मत्रपदो से भी ज्ञात होता है कि वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरो मे से भगवान् पार्श्वनाथ की स्तुति के रूप मे जितने मत्र या स्तोत्र उपलब्ध हैं, उतने अन्य के नहीं हैं। ☼☼☼

मीमासा—पार्श्वनाथ भगवान के जितने स्तोत्र हैं, उतने ही जिनमन्दिर हैं, यह किसी को भूलना नही चाहिए। श्री पार्श्वनाथ

भगवान को कल्पसूत्र आदि शास्त्रो मे पुरुषादानीय कहा है। प्राचीन स्तोत्रो मे आपके १०८ नाम प्रसिद्ध हैं। इन नामो से सम्बन्धित विशाल तीर्थ आज भी मौजूद हैं और भविक लोग उन तीर्थों की यात्रा करके पावन होते हैं। चिंतामणि पार्श्वनाथजी, अतरिक्ष पार्श्वनाथजी, अवति पार्श्वनाथजी, शखेश्वर पार्श्वनाथजी, जिरावला पार्श्वनाथजी वरकाणा पार्श्वनाथजी, नवखडा पार्श्वनाथजी, नाकोडा पार्श्वनाथजी, सम्मेतशिखर पर श्री शामलिया पार्श्वनाथजी, पचासरा पार्श्वनाथजी आदि अनेक नामो से भगवान श्री पार्श्वनाथजी अनेक तीर्थों मे पूजे जाते हैं। इन सब तथ्यो को इतिहास लेखक आचार्य जानें और मानें तथा सत्य को आत्मसात् करें, यही हमारी शुभेच्छा है।

मूर्तिपूजा को मैं बहुत प्राचीन और परमोपयोगी मानता हू। जैनधर्म को अब तक इस रूप मे टिकाये रखने का प्रमुख श्रेय मैं मूर्तिपूजा को देता हू।

—श्री अगरचन्दजी नाहटा,
इतिहासवेत्ता एव पुरातत्त्वविद्

[प्रकरण–३४]

ा ंग्री ा में दि ा
ी ी

आगम शास्त्र, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य भाष्य, वृत्ति, चूर्णि, टीकादि रूप आगमिक सामग्री एव जमीन मे से निकले प्राचीन अवशेष विशेष रूप ऐतिहासिक तथ्यो से यह सर्वथा सत्य सिद्ध हो गया है कि जिन मूर्तिया, चरण पादुका एव स्तूपादि भगवान महावीर से भी बहुत पहले पूजे जाते थे। जिन मदिर एव जिन प्रतिमा विषयक इसी प्रकार प्राचीन प्रामाणिक आधार होते हुए भी आचार्य हस्तीमलजी ने कैसा कल्पित, गलत एव अप्रमाणिक इतिहास लिखा है इसकी मीमासा पिछले ३३ प्रकरणो मे हम कर आये हैं।

एक माने हुए जैनाचार्य ने पथमोह मे फँसकर अप्रमाणिकता और झूठ का सहारा लेकर जैनधर्म के इतिहास को कलकित किया है और आचार्य पद की गरिमा को कालिमा लगायी है। फिर भी उल्टा चोर कोटवाल को डाटे इस भाति खड १ (पुरानी आवृत्ति) अपनी बात पृ० २५ पर आचार्य लिखते हैं कि—

☆☆☆ जैन इतिहास के इस प्रकार के प्रामाणिक आधार होने पर भी आधुनिक विद्वान् इसको बिना देखे जैनधर्म और तीर्थंकरो के विषय मे भ्रान्तिपूर्ण लेख लिख डालते हैं, यह आश्चर्य एव खेद की बात है। इतिहासज्ञ

को प्रामाणिक ग्रन्थो का अध्ययन कर जिस धर्म या सम्प्रदाय के विषय मे लिखना हो प्रामाणिकता से लिखना चाहिए । साम्प्रदायिक अभिनिवेश या बिना पूरे अध्ययन मनन के सुनी सुनाई बात पर लिख डालना उचित नहीं । ❋ ❋ ❋

मीमासा—यही बात हमे आचार्य के लिये ही कहनी है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो जैन सम्प्रदाय मूर्तिपूजा मे विश्वास करते हैं, फिर मूर्तिपूजा के विषय मे आचार्य ने विरुद्ध क्यो लिखा ? आगम-ग्रन्थो, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य एव ऐतिहासिक शिलालेखो आदि की प्रामाणिक सामग्री होते हुए भी विपरीत मार्ग पर चलना और अपने अनुयायियो को भी विपरीत मार्ग पर भटकाये रखना क्या उचित है ? अगर आचार्य को जैनधर्म के विषय मे इतिहास लिखना था तो दोनो दिगम्बर एव श्वेताम्बर जैन परम्परा के प्राचीन साहित्य और ऐतिहासिक सामग्री के सहारे से मूर्तिपूजा विषयक तथ्य को सत्य लिखना था । इससे विपरीत अगर आचार्य को कल्पना पूर्वक मनगढत इतिहास का एक समिति द्वारा निर्माण करवाना ही था तो जैन समाज को ऐसे कल्पित इतिहास की आवश्यकता ही क्या थी ?

अगर आचार्य को स्थानकपथी मान्यता पूर्ण ही इतिहास लिखना था और जिनमन्दिर आदि विषयो को अधेरे मे ही रखना था तो अच्छा यह था कि आप "स्थानकपथी जैन इतिहास" ऐसा कुछ नाम देकर श्रीमान् लोकाशाह से ही उसका प्रारम्भ करते और किसी भी इतिहास समिति द्वारा चाहे जैसा लिखवाते—छपवाते इसमे हमे कोई आपत्ति नही होती और "स्थानकपथी जैन इतिहास" ऐसा कुछ नाम पूर्वक उनके आद्य पूर्वपुरुष वृद्ध जैन गृहस्थी लोकाशाह से इतिहास प्रारम्भ करने पर आचार्य को किसी भी झूठ का सहारा लेने की नौबत न आती एव कम से कम जैन इतिहास को कलकित करने के पाप से भी आप बच जाते । स्थानकपथी मान्यता के अनुकूल इतिहास लिखना

और उसका नाम "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" रखना यह एक मनीषी आचार्य का भ्रम फैलाने का अप्रमाणिक कृत्य ही है। खड १, पृ० ३४ पर सम्पादकीय नोध मे गजसिहजी राठौड लिखते हैं कि—

☼☼☼ जैन समाज, खासकर श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज मे जैनधर्म के प्रामाणिक इतिहास की कमी चिरकाल से खटक रही थी। ☼☼☼

मीमासा—"जैन समाज" मे इतिहास की कमी है ही नही। वसुदेव हिण्डी, पउमचरिय, तिलोय पण्णत्ति, चउवन महापुरिस चरिय, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, हरिवश पुराण आदि अनेक प्रामाणिक प्राचीन इतिहास एव आगम तथा आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य, चरित्र ग्रन्थो आदि मे प्राचीन जैनाचार्यों द्वारा कथित जैन समाज का प्रमाणिक इतिहास सुव्यवस्थित रीति से सुरक्षित है और सम्मेतशिखर, पावापुरी, गिरनार, शत्रु जय, राणकपुर, आबू, केसरियाजी, कुम्भारियाजी, तारगाजी आदि हजारो तीर्थों एव लगभग ८० हजार से भी अधिक जिन मन्दिरो के रूप में जैन समाज का इतिहास स्वय व्यवस्थित है। अत जैन समाज मे इतिहास की कमी खटकने की सम्पादक श्री गजसिहजी की कथित बात सर्वथा असत्य ही है। आचार्य स्वय खड-१ [पुरानी आवृत्ति] पृ० ६ पर अपनी बात मे लिखते हैं कि—

☼☼☼ उपरोक्त पर्यालोचन के बाद यह कहना किंचित्मात्र भी अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि हमारा जैन इतिहास बहुत गहरी सुदृढ नींव पर खड़ा है। यह इधर-उधर की किंवदन्ती या कल्पना के आधार से नहीं पर प्रामाणिक पूर्वाचार्यों की अविरल परम्परा से प्राप्त है। अत. इसकी विश्वसनीयता मे लेशमात्र भी शका की गु जाइश नहीं रहती। ☼☼☼

मीमासा—आचार्य के उक्त कथन से भी "जैन समाज मे इतिहास की कमी" की गजसिहजी द्वारा लिखित बात असत्य ही सिद्ध

होती है। प्रामाणिक पूर्वाचार्यों कथित सत्य इतिहास मौजूद होते हुए भी कल्पित एव किंवदन्ती स्वरूप, असत्य एव स्थानकपथी मान्यता से पूर्ण, नामधारी एक समिति द्वारा प्रकाशित किया गया और नामधारी एक आचार्य द्वारा रचा गया "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" नामक पुस्तक को कौन सज्जन सत्य मान सकता है? अत जिन मन्दिर एव जिनमूर्तिपूजा मे विश्वास करने वाले सुज्ञो से मेरा अनुरोध है कि जितनी सभव हो सके उतनी ताकत से इतिहास लेखन की ऐसी कुप्रवृत्तियो की आलोचना करनी चाहिए।

रही बात स्थानकपथी समाज की सो वे अपने इतिहास का नाम "स्थानकपथी समाज का मौलिक (!) इतिहास" रखकर, फिर चाहे जैसा मनमाना अपना इतिहास रचें, तो हमे कोई विवाद नही है।

भरतचक्रवर्ती ने अष्टापद पर जिनमंदिर बनवाये इस विषय मे कल्पित पौराणिक किंवदन्ती को सामने कर श्री सिद्धसेनसूरिजी की घटना को प्रतिमा के कारण अप्रामाणिक लिखकर, श्री गौतमस्वामी का अष्टापदगिरि पर जाने का सत्य छिपाकर, दशपूर्वधर श्री वज्रस्वामी का विद्याबल से पुष्प लाने के सत्य को विपरीत कर आचार्य ने सत्य से वैमनस्य रखा है और ऐसी तो अनेक बातें हैं, जिनको आचार्य ने विपरीत लिखी है, फिर भी वे खड-१, पृ० ३१ पर लिखते हैं कि—

☼ ☼ ☼ कहीं भी साम्प्रदायिक अभिनिवेश वश कोई अप्रमाणिक बात नहीं आने पावे, इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है। ☼ ☼ ☼

मीमांसा—स्थानकपथी कभी भी जैनधर्म विषयक इतिहास सत्य लिख ही नही सकते हैं। साम्प्रदायिक व्यमोह के कारण आचार्य ने अपने इतिहास से जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर आदि विषयो मे अनेक अप्रामाणिक बातें लिखी हैं, अत उनका उक्त कथन सर्वथा असगत ही है।

मुख्य सपादक श्री गजसिंहजी राठौड को हमारा इतना ही कहना है कि इतिहास लेखन मे आगम शास्त्र, आगमेतर प्राचीन जैन साहित्य एव प्राचीन जिनमदिर-जिनमूर्तिया एव शिलालेख आदि के विद्यमान होते हुए, अगर आप सत्य इतिहास लिखते-लिखवाते और सही मार्गदर्शन करते तो आपकी विद्वता से विज्ञजनो को अवश्य सतोष और आनन्द होता ।

आचार्य हस्तीमलजी से हमे आशा ही नही, विश्वास भी है कि वे आचार्य पद की गरिमा समझते हुए आगे प्रामाणिक एव सत्य इतिहास लिखने का कष्ट करेंगे ।

यही शुभेच्छा है कि आगे के इतिहास मे आचार्य हस्तीमलजी पूज्य हेमचन्द्राचार्य महाराज, पूज्य हरिभद्रसूरिजी, पूज्य अभयदेव सूरिजी, पूज्य हीरसूरीश्वरजी, पूज्य यशोविजयजी आदि अनेक महान पुरुषो के विषय मे जो भी लिखे वह सत्य तथ्य पर आधारित होना चाहिए एव कुमारपाल महाराजा, वस्तुपाल-तेजपाल, उदायन मत्री, आम्रभट्ट-बाहडभट्ट, धरणाशाह, पेथडशाह, जगडुशाह, विमलशाह, करमाशाह आदि महान जैन श्रावको के विषय मे भी लिखें तो सत्य लिखें । साथ ही साथ शत्रुजय, सम्मेतशिखरजी, पावापुरीजी, गिरनारजी, वैभारगिरि, राणकपुर, आबू, तारगाजी, कुम्भारियाजी, केसरियाजी, नाकोडाजी, शखेश्वरजी आदि तीर्थों के विषय मे लिखें तो सही सही सत्य लिखेंगे और मिली हुई एव बची हुई समयादि शक्तियो का सदुपयोग कर जैन शासन की गरिमा को उन्नत करेंगे ।

जैन समाज मे विद्यमान सर्व प्रबुद्ध जनो से विनती है कि प्रकाश से अधकार मे ले जाने वाली गलत इतिहास आदि साहित्य लिखने वालो की बालिश कुचेष्टा से सावधान एव सतर्क रहे ।

मेरे द्वारा जिनाज्ञा के विरुद्ध यदि कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छामि दुक्कडम् देता हूँ ।

सुज्ञे मयि उपकृत्य शोध्यम् ।

जैनं शासनम् जयतु ।

[प्रकरण—३५]

परि

तिपू ा में शा ों ो क ि

प्रथम प्रमाण

श्री ज्ञाताधर्म कथा नामक आगमसूत्र के छट्ठे अध्ययन मे द्रौपदी ने जिन पूजा की थी, ऐसा स्पष्ट कथन है। जिससे श्री नेमिनाथ भगवान के काल मे भी जिनमूर्ति पूजा थी, यह बात सिद्ध होती है। श्री ज्ञाताधर्म कथा सूत्र कथित पाठ इस प्रकार है—

❋❋❋ तएण सा दोवई रायवर कन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता मज्जणघरमणुप्पविसइ, अणुपविसइत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमगलपायच्छित्ता सुद्धपावेसाइ मगलाइ वत्थाइ पवर परिहिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता जिणघर अणुपविसइ, अणुपविसइत्ता आलोए जिणपडिमाण पणाम करेइ, पणाम करेइत्ता लोमहत्थय परामुसइ, एव जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्व जाव धूव डहइ, धूव डहइत्ता वाम जाणु अचेइ, अचेइत्ता दाहिण जाणु धरणीतलसि णिवेसेइ, णिवेसित्ता तिक्खुत्तो मुद्धाण धराणीतलसि नमेइ, नमयित्ता ईसि पच्चुणमइ करयल जाव कट्टु एव वयासि—

नमोत्थुण अरिहताण भगवताण जाव सपत्ताण वदइ नमसइ जिणघराओ पडिणिक्खमइ। [सूत्र ११-९] ❋❋❋

अर्थ—इसके बाद वह द्रौपदी राजकन्या स्नानघर मे आई, स्नान घर मे आकर स्नान किया, बलिकर्म-कौतुक मगल प्रायश्चित्त करके शुद्ध प्रवेश योग्य श्रेष्ठ वस्त्रो को पहिनकर स्नान घर मे से बाहर निकली और जहाँ जिन मन्दिर है वहाँ आई, आकर के जिन मन्दिर मे प्रवेश किया, प्रवेश करके जिनप्रतिमा के दर्शन किये, प्रणाम किया, प्रणाम करके मोरपीछ (मोरपख) से जिस प्रकार सूर्याभदेव जिन प्रतिमा को पूजता है, उसी प्रकार (विस्तार से) पूजा-अर्चना की, यावत् धूप करके बाया घुटना खडा करके दाया घुटना को जमीन पर स्थापन करती है, स्थापन करके तीन बार मस्तक झुकाकर नमस्कार करती है, नमस्कार करके सिर झुकाकर दोनो हाथ जोडकर इस प्रकार बोलती है—

नमस्कार हो अरिहत भगवतो को यावत् जो (सिद्धिगति को) प्राप्त हुए हैं उनको वदन करती है, नमस्कार करती है, वदन और नमस्कार करके जिनमन्दिर मे से बाहर निकलती है।

[नोध—यह आगमिक शैली है कि आगम शास्त्रो [भगवान की वाणी] को ग्रंथारूढ करते वक्त ग्रन्थ-विस्तार के भय से ग्रन्थकर्ता महर्षियो ने समान वर्णन वाले प्रसगो को जहाँ विस्तार से वर्णन मिलता हो (लिखा हो) उसी आगम सूत्र का निर्देश (सूचन) कर दिया है कि—' वहाँ से इस विषयक वर्णन देख लेना।"

जैसे श्री ज्ञाताधर्म कथा नामक अगसूत्र मे श्री मल्लिनाथ स्वामी का जन्म महोत्सव विषयक वर्णन का निर्देश शास्त्रकार महर्षि पूज्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण महाराज ने "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र' मे से देखलेने का कह दिया है—

"जहा जम्बूदीव पण्णत्तिए सव्व जम्मण भाणियव्व"

तथा ज्ञातासूत्र मे ही श्री मल्लिनाथ स्वामी के दीक्षा विषयक वर्णन को जमालि के अधिकार मे से जान लेना ऐसा सूत्रकार महर्षि श्री देवर्द्धिगणि महाराज ने कहा है । यथा—

✲ ✲ ✲ एव विणिग्गमो जहा जमालीस्स । ✲ ✲ ✲

ठीक उसी प्रकार राजकुमारी द्रौपदी ने विस्तार से जिन पूजा की थी, इस विषय मे शास्त्रकार महर्षि "रायपसेणी" नामक उपाग-सूत्र का निर्देश करके कहते हैं कि— "द्रौपदी ने विस्तार से जिन पूजा की थी वह "रायपसेणी सूत्र" मे से देख लेना ।"

श्री ज्ञाताधर्म कथा नामक छट्ठा अगसूत्र के कर्ता १ पूर्वधर महर्षि पूज्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण भी द्रौपदी विषयक जिनपूजा के अधिकार को सूर्याभदेवका अधिकार जिस "रायप्रश्नीय" नामक उपाग सूत्र मे है, उसमे से देखलेने का निर्देश [सूचन] करते हैं, यह इसबात का सूचक है कि १ पूर्वधर महर्षि श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण महाराज भी अगसूत्र के समान ही उपाग सूत्र का भी महिमा—महत्व करते है । यानी उपागसूत्र भी अगसूत्र जितना ही महत्वपूर्ण और प्रामाणिक है ।]

द्वितीय प्रमाण

श्री रायपसेणीय नामक उपाग सूत्र मे सूर्याभदेव ने जिन-मूर्तिपूजा की थी, इस विषयक पाठ—

✲ ✲ ✲ तएण से सूरियामे देवे चउहिं सामाणिय सहस्सीहिं जाव अन्नेहिं य बहूहिं य सूरियाभ जाव देवेहिं य देवीहिं सद्धि सपरिवुडे सव्वड्ढिए जाव णा (व) निय-रवेण जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सिद्धायतण पुरत्थिमिल्लेण दारेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छदए,

जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता जिणपडिमाण आलोए पणाम करेंति, करित्ता लोमहत्थएण गिण्हति, गिण्हित्ता जिणपडिमाण लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गधोदएण ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सुरभिगधकासाइएण गायाइ लूहेति, लूहित्ता जिण-पडिमाण सरस गोसीस चदणेण गायाइ अणुलिपइ, अणुलिपइत्ता अहयाइ देवदूस जुयलाइ नियसेइ, नियसित्ता पुप्फारुहण मल्लारुहण गधारुहण चुण्णरुहण वन्नारुहण वत्थारुहण आभरणारुहण करेइ, करित्ता आसतोसत्त विउलवट्टवग्घारिय मल्लदाम-कलाव करेइ, मल्लदामकलाव करित्ता कयग्गह गहिय करयल पब्भट्ठ विप्पमुक्केण दसद्धवन्नेण कुसुमेण मुक्क पुप्फ-पु जोवयार कलिय करेंति, करित्ता जिणपडिमाण पुरतो अच्छेहि सण्हेहि रययामएहि अच्छरसा तदुलएहि अट्ठट्ठ मगले आलिहइ, त जहा-सोत्थिय जाव दप्पण । त र च ण चवप्पभरयण वइर वेरुलिय विमलदड कचण मणिरयण भत्तिचित्त कालागुरु-पवर कु दरुक्क तुरुक्क धूव त गधुत्तमाणुविद्ध च धूववट्टि विणिम्मुयत्तवेरुलियमय कडुच्छुय पग्गहिय-पयत्तेण "धूव दाउण जिणवराण" अट्ठसय विसुद्ध गथजुत्तेहि अत्थजुत्तेहि अपुण-रुत्तेहि महावित्तेहि सथुणइ, सथुणईत्ता सत्तट्ठ-पयाइ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कईत्ता वाम जाणु अचेइ, अचईत्ता दाहिण जाणु धरणीतलसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाण धरणीतलसि निवाडेइ, निवाडित्ता ईसि पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमईत्ता करयल परिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासि—नमोत्थुण अरिहताण जाव सपत्ताण वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता जेणेव देवच्छदए जेणेव सिद्धाय-तणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ ।

[रायप्पसेणी सुत्त] ☼ ☼ ☼

अर्थ—उसके बाद सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवो के साथ यावत अन्य भी अनेक सूर्याभविमान मे निवास करने वाले देव तथा देवियो के साथ सपरिवार सर्वऋद्धि से सहित (युक्त) यावत् वाजित्रनाद के साथ जहाँ सिद्धायतन (जिन मदिर) है वहाँ आता है, आकर पूर्वद्वार से सिद्धायतन मे प्रवेश करता है, प्रवेश करके जहाँ देव-

छदक है और जहाँ जिनप्रतिमाएँ हैं वहा जाता है, जाकर जिनप्रतिमा का दर्शन करता है, दर्शन करके प्रणाम करता है, प्रणाम करके मोरपीछ (मोरपख) लेता है, लेकर प्रतिमाओ का मोरपीछ से प्रमार्जन करता है। प्रमार्जन करने के बाद जिनप्रतिमाओ को सुगन्धित गधोदक से स्नान कराता है, अभिषेक करके सुरभिगन्ध युक्त काषायिक वस्त्रो से (अगलुहना से) भगवान के गात्रो को स्वच्छ करता (पोछता) है, स्वच्छ करके सरस गोशीर्ष चदन से गात्रो का विलेपन करता है, विलेपन करके अखडित देवदूष्य (वस्त्रयुगल) रखता है, रखकर पुष्प चढाता है, माला अर्पण करता है, गध और सुगधी अर्पण करता है, तथा वर्णक अर्पण करता है, वस्त्र अर्पण करता है, आभूषण चढाता है, आभूषण चढाकर चारो ओर लम्बी पुष्पमालाएँ लटकाता है, पुष्पमाला लटकाकर खुले हुए पचवर्ण पुष्प हाथमे लेकर चारो ओर बिखेरता है, इस प्रकार पुष्पो द्वारा पूजोपचार (पूजा द्वारा भक्ति से) पूर्वक सिद्धायतन (जिन मन्दिर) को सजाता है, सजाने के बाद मे जिनप्रतिमाके सामने अप्सराएँ स्वच्छ चिकना रजतमय अक्षतो से अष्ट मगल का आलेखन करती हैं, जिनके नाम स्वस्तिक यावत् दर्पण हैं। उसके बाद चन्द्रप्रभ रत्न, हीरा और वैडूर्यरत्नो युक्त जिसका दड उज्ज्वल है एव सुवर्ण और मणिरत्नो की रचना से मनोहर, कृष्णागरु श्रेष्ठ कुन्दुरूप तुरुष्क धूप से मघमघायमान उत्तम गध से युक्त धूपवत्ती जैसी सुगधिको फैलानेवाला वैडूर्यरत्नमय धूपधाना (धूपदानी) को लेकर प्रयत्न पूर्वक (सावधानी से) जिनवरो को धूप करता है. बाद मे १०८ विशुद्ध रचनावाला अर्थ-युक्त अपुनरुक्त (विविध) महान श्लोको से स्तुति करता है। स्तुति करके सात-आठ कदम पीछे हटता है, पीछे हटकर बायाँ घुटना ऊँचा करता है और दाहिना घुटना जमीन पर टिकाकर जमीन पर तीन बार सिर झुकाता है, मस्तक को जमीन पर लगाकर थोडा ऊँचा उठाता है, ऊँचा उठाकर दोनो हाथ जोडकर अजलीबद्ध करसपुट करके इस प्रकार स्तुति करता है—

"नमस्कार हो अरिहत भगवन्तो को यावत् जो सिद्धिगति को प्राप्त किये हुए हैं उनको"—इत्यादि वदन नमस्कार करता है, वदन–नमस्कार करके जहाँ देवच्छंदक है, जहाँ सिद्धायतन का मध्यभाग है वहाँ जाता है।

[श्री राजप्रश्नीय सूत्र]

—तृतीय प्रमाण—

श्री अगचूलिया नामक कालिक सूत्र [जिसका उल्लेख श्री नदीसूत्र कथित ७३ सूत्र मे है] मे कहा है कि सर्वसावद्य त्याग रूप दीक्षा जिनमन्दिर मे देनी चाहिए। यथा—

☼☼☼ तिहि नक्खत्त मुहूत्त रविजोगाइय पसन्न दिवसे अप्पा वोसिरामि। "जिणभवणाइ" पहाणखित्ते गुरु वदित्ता भणइ इच्छकारि तुम्हे अम्ह पच महाव्वयाइ राइभोयण वेरमण छट्ठाइ आरोवावणिया।

[श्री अगचूलिया सुत्त] ☼☼☼

अर्थ—तिथि, नक्षत्र, मुहूर्त्त, रवियोग आदि योग युक्त प्रशस्त शुभदिन को (मुमुक्षु) अपनी आत्मा को पाप से वोसिरावे (त्यागे), सो जिनभवन (जिनमन्दिर) आदि प्रधान (श्रेष्ठ) क्षेत्र मे गुरु को वदना करके कहे—'प्रसाद करके आप मुझको पच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन विरमणव्रत आरोपण करो (देवो)।

चतुर्थ प्रमाण

श्री भगवतीसूत्र मे नियुंक्ति, टीका आदि को मानने का निर्देश किया है। यथा—

☼☼☼ सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्ति मिस्सओ भणिओ,
तइओय निरविसेसो। एस विहि होई अणुओगो।

—श्री भगवती सूत्र, २५ वाँ शतक, तीसरा उद्देशा ☼☼☼

अर्थ—प्रथम (सामान्य से) सूत्र और अर्थ का कथन करना, दूसरा निर्युक्ति के साथ अर्थ देना (अर्थ करना) और तीसरी बार निर्विशेष अर्थात् सम्पूर्ण (पूरा पूरा) अर्थ देना (करना)।

[इस आगम पाठ मे तीसरे प्रकार की व्याख्या मे भाष्य, चूर्णि, टीका आदि के सहारे से सूत्रार्थ करना ऐसा साफ लिखा हुआ है।]

पञ्चम प्रमाण

श्री महाकल्पसूत्र नामक उत्कालिक सूत्र मे [जिस सूत्र का नाम कथन श्री नन्दीसूत्र मे भी है] लिखा है कि—साधु और श्रावक जिन मन्दिर मे नित्य जावें। अगर नही जावें तो प्रायच्छित लगता है, ऐसा श्री महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी गणधर महाराज के प्रश्न के उत्तर मे कहा है। यथा—

✲✲✲ से भयव ! तहारुव समण वा माहण वा चेइयघरें गच्छेज्जा ? हता गोयमा ! दिणे दिणे गच्छेज्जा। से भयव ! जत्थ दिणे ण गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्त हुवेज्जा ? गोयमा ! पमाय पडुच्च तहारुव समण वा माहण वा जो जिणघर न गच्छेज्जा तओ छट्ठ अहवा दुवालसम पायच्छित्त हुवेज्जा। से भयव ! समणोवासगस्स पोसहसालाए पोसहिए पोसह बम्भयारि किं जिणघर गच्छेज्जा ? हता, गोयमा ! गच्छेज्जा। से भयव ! केणट्ठेण गच्छेज्जा ? गोयमा ! णाण दसण चरणट्ठाए गच्छेज्जा। जे कोई पोसहसालाए पोसह बम्भयारी जओ जिणहरे न गच्छेज्जा तओ किं पायच्छित्त हुवेज्जा ? गोयमा ! जहा साहू तहा भाणियव्वं, छट्ठ अहवा दुवालसम पायच्छित्त हुवेज्जा।

[श्री महाकल्पसूत्र शास्त्र] ✲✲✲

अर्थ – गौतम स्वामी का प्रश्न:—(साधु और श्रावक नित्य जिनमन्दिर मे जावे) हे भगवत् ! अगर नही जावें तो क्या प्रायश्चित (दण्ड) लगता है ?

महावीर स्वामी—हे गौतम ! यदि प्रमाद (आलस्य) के कारण वे जिन मदिर न जावें तो दो व्रत या तीन व्रत (उपवास) का प्रायश्चित्त लगता है ।

गौतम स्वामी—हे भगवत् ! पौषध ब्रह्मचारी श्रावक पौषध मे रहा हुआ क्या जिन मन्दिर जावे ?

महावीर स्वामी—हाँ गौतम ! जावे ।

गौतम स्वामी—भगवन् ! मदिर मे वह किसलिये जावे ?

महावीर स्वामी—हे गौतम ! ज्ञान-दर्शन-चारित्र निमित्त जावे ।

गौतम स्वामी—पौषधशाला मे रहा हुआ पौषध-ब्रह्मचारी श्रावक जिनमन्दिर मे नही जावे, तो प्रायश्चित्त क्या होता है ?

महावीर स्वामी—हे गौतम ! साधु को जितना प्रायश्चित होता है उतना प्रायश्चित लगता है यानी छट्ठ (बेला) अथवा उसके समान तप का प्रायश्चित लगता है ।

[श्री महा कल्पसूत्र शास्त्र का हिन्दी अनुवाद]

षष्ठ प्रमाण

श्री महा निशीथ सूत्र मे लिखा है कि जो पुरुष जिन मन्दिर बनावे, उसको बारहवां देवलोक तक की प्राप्ति होती है । यथा—

काउपि जिणायययणेहिं, मडिय सव्वमेयणीवट्ट ।
दाणाइ चउक्केण, सड्ढो गच्छेज्ज अच्चुय जावनपर ।।

अर्थ—जिन मदिरो से पृथ्वी को मडित (सुशोभित) करके, दानादिक चारो (दान, शील, तप और भावना) धर्म करके श्रावक यावत् बारहवें देवलोक तक जावें ।

सप्तम प्रमाण

श्री आवश्यक सूत्र मे वग्गुर नामक श्रावक ने श्री पुरिमताल नगर मे श्री मल्लिनाथजी का जिनमदिर बनवाकर, सम्पूर्ण परिवार सहित जिनपूजा की ऐसा अधिकार आता है । यथा—

तत्तोय पुरिमेताल, वग्गुर-इसाण अच्चए पडिम ।
मल्लिजिणाययण पडिमा, अन्नाएवसिवहुगोठ्ठी ।।

अष्टम प्रमाण

आगमेतर साहित्य मे सबसे प्राचीन जैन ग्रन्थ "उपदेशमाला", जो श्री महावीर भगवान के हस्त दीक्षित श्री धर्मदासगणि महाराज विरचित है, उसमे लिखा है कि—

✲ ✲ ✲ निक्खमण – नाण – निव्वाण, जम्मभूमीउ वदइ जिणाण ।। २३६ ।। ✲ ✲ ✲

अर्थ —श्रावक को (जैनो को) तीर्थङ्कर भगवान सम्बन्धि जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण (मोक्ष) आदि पवित्र कल्याणक भूमि की वदना-स्पर्शना करनी चाहिए ।

इसी उपदेशमाला के श्लोक २४२ मे लिखा है कि—

✲ ✲ ✲ साहूण चेइयाण य, पडणीय तह य अवण्णवाय च ।
जिणपवयणस्स अहिय सव्वत्थामेण वारेई ।।✲✲✲

"श्री उपमिति भव प्रपञ्चा कथा" के कर्ता पूज्य सिद्धर्षि गणि महाराज उक्त श्लोक की टीका करते हैं कि—

❋ ❋ ❋ साधुना मुनीना चैत्याना जिनप्रासाद-प्रतिमाना च प्रत्यनीक क्षुद्रोपद्रवकारिणं तथा अवर्णवादिन कुवचनभाषक जिनशासनस्य अहित कारिण शत्रुभूत जन, सः श्रावकः समस्त प्रायेन स्वकीय सर्व ।, प्राणव्यये-नापि वारयति । शासनोन्नतिकरणस्य महोदय हेतुत्वात् । ❋ ❋ ❋

अर्थ—साधु तथा जिनमन्दिर एव जिनप्रतिमा को तुच्छ उपद्रव करने वाले और उनका अनादर एव कुवचन बोलकर अवर्णवाद करने वाले जैन शासन के शत्रुभूत व्यक्तिका जैन श्रावक सर्व सामर्थ्य-शक्ति से यावत् प्राणत्याग पूर्वक भी सामना-विरोध करे, क्योंकि शासनोन्नति करने से महोदय होता है ।

नवम प्रमाण

१४ पूर्वधर श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज श्री आवश्यक सूत्र मे कहते हैं कि—

❋ ❋ ❋ अकसिण पवत्तगाण विरया विरयाण एस खलु जुत्तो ।
ससार पयणु करणे दव्वत्थए कूवदिट्ठ तो ॥ ❋ ❋

अर्थ—सर्वथा व्रत मे प्रवृत्त न हुए विरता-विरति अर्थात् श्रावक को यह (पुष्पादि से पूजा करण रूप द्रव्यस्तव) निश्चय ही युक्त-उचित है । ससार को पतला करने मे अर्थात् घटाने मे-क्षय करने मे कूप का दृष्टान्त जानना ।

दशम प्रमाण

"जघाचारण तथा विद्याचारण मुनियो ने जिन प्रतिमा वान्दी है" इस कथन का उल्लेख श्री भगवती सूत्र शतक २०, उद्देश ९ मे है—

☼☼☼ जघाचारणस्स ण भते ! तिरिय केवइए गइ विसए पन्नत्ता ? गोयमा से ण इत्तो एगेण उप्पाएण रुअगवरे दीवे समोसरण करेइ, करइत्ता तहिं चेइआइ ववइ, ववइत्ता इहमागच्छइ इहमागच्छइत्ता, इह चेइयाइ ववइ, जघाचारणस्स गोयमा ! तिरिय एवइए गइविसए पन्नत्ता। ☼☼☼

अर्थ—हे भगवन् ! जघाचारण मुनि का तिरछी गति का विषय कितना है ? हे गौतम ! वह यहाँ से एक उत्पात (छलाग) मे रुचकवर (नामक तेरहवाँ) द्वीप मे समवसरण (विश्राम) करे, करके वहाँ के चैत्य अर्थात् जिनमन्दिर (शाश्वता जिन मदिर-सिद्धायतन) को वादे, वादकर वहाँ से वापस लौटते दूसरे उत्पात मे नन्दीश्वरद्वीप मे समवसरण (विश्राम) करे, विश्राम करके वहाँ के (शाश्वत जिन) चैत्य यानी जिन मन्दिर को वादे, वादकर यहाँ (भरत क्षेत्र मे) आवे, यहाँ आकर यहाँ के (अशाश्वत) जिन चैत्य यानी जिनमदिर वादे। हे गौतम ! जघाचारण मुनि का तिरछीगति का विषय इतना (जानना) है।

विद्याचारण मुनि के जिन प्रतिमा वन्दन के विषय मे श्री भगवती सूत्र मे पाठ है कि—

☼☼☼ विज्जाचारणस्स ण भन्ते ! तिरिय केवइए गइ विसए पन्नत्ते ? गोयमा ! सेण इत्तो एगेण उप्पाएण माणुसोत्तरे पव्वए समोसरण करेइ, करइत्ता तहिं चेइआइ वन्दइ, वन्दइत्ता बीएण उप्पाएण णदिसरवर दीवे समोसरण करेइ करइत्ता तहिं चेइआइ वन्दइ, वदइत्ता तओ पडिनियत्तइ इहमागच्छइ, इहमागच्छइत्ता इह चेइआइ ववइ। विज्जाचारणस्स ण गोयमा तिरिय एवइए गइ विसए पण्णत्ते।

[भगवतीसूत्र, २० शतक, ९ उद्देश]

अर्थ—हे भगवन् ! विद्याचारण मुनि का तिरछी गति का विषय कितना है ? हे गौतम ! वह यहाँ से एक उत्पात (उड़ान) मे मानुषोत्तर पर्वत पर समवसरण (विश्राम) करे, विश्राम करके वहाँ के

चैत्य यानी जिनमन्दिर को जुहारे-वदन करे, वान्द कर दूसरे उत्पात मे नन्दीश्वर द्वीप मे समवसरण (विश्राम) करे (रुके)। विश्राम कर के नन्दीश्वर द्वीप के चैत्य यानी जिनमन्दिर को वान्दे, जिनमन्दिर को वान्द कर यहाँ वापस लौटे। यहाँ आकर (मध्यलोक स्थित–भरत क्षेत्र के अशाश्वत) जिन मन्दिर को वान्दे-जुहारे। हे गौतम! विद्याचारण मुनि का तिरछी गति का इतना विषय है।

एकादश प्रमाण

श्री पचाशक प्रकरण मे १४४४ ग्रन्थ के रचयिता, परम सत्य प्रिय पूज्य हरिभद्रसूरिजी महाराज लिखते हैं कि "गृहस्थो के पास स्वय के उपभोग की जो सामग्री है उनका सर्वश्रेष्ठ उपयोग भगवान श्री तीर्थंकरो मे विनियोग है यथा—

"न य अन्नो उवओगो, एएसिं सियाण लट्ठयरो"

इस गाथा [श्लोक] की टीका करते हुए नवागी टीकाकार पूज्यपाद श्री अभयदेवसूरिजी महाराज लिखते हैं कि—

❋ ❋ ❋ न नैव, च समुच्चये अन्यो जिनपतिपूजातोऽपरः उपयोगो विनियोगस्थानम्, एतेषा प्रवरसाधनाना सता विद्यमानाना · प्रधानतरो भवति अत प्रवर पुष्पादिभि पूजा विधेया इति गाथार्थ । ❋ ❋ ❋

अर्थ - विद्यमान् प्रवर [श्रेष्ठ] साधनो [वस्त्र-पुष्प-फल-आदि] का जिनेन्द्र भगवान की पूजा से बढकर अन्य उत्तम उपयोग नही है। इसलिये पुष्पादि से जिनेश्वर भगवान की पूजा करनी चाहिए।

द्वादश प्रमाण

आगमेतर जैन साहित्य मे सबसे प्राचीन प्रामाणिक "उपदेश-माला" नामक ग्रन्थ, जो श्री महावीर भगवान के हस्त दीक्षित शिष्य

पूज्य श्री धर्मदास गणि महाराज द्वारा रचित है, उसमे जैन श्रावक को हरदिन जिनमन्दिर मे जिन प्रतिमा की अष्टप्रकारी पूजा करने का विधान है।

वदइ उभओ कालपि, चेइयाइ थइथुई परमो।
जिणवर-पडिमा-घर, धूव-पुप्फ-गधच्चणु ज्जुत्तो ॥
[श्लोक—२३०]

अर्थ—स्तवन, स्तोत्र, स्तुति आदि से प्रधान (युक्त) होकर श्रावक तीनकाल श्री जिनेश्वर भगवान के मदिर मे जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा को पुष्प, धूप, गध अर्चनादि से पूजन करें।

[उपदेशमाला शास्त्र]

त्रयोदश प्रमाण

परम सत्य प्रिय, तार्किक शिरोमणि, १४४४ ग्रथ के रचयिता पूज्य श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज जो विक्रम की आठवी शताब्दि मे हुए, आप "पचाशक" शास्त्र मे लिखते हैं कि—

जिणभवण-बिबठावण-जत्ता-पूजाइ सुत्तओ विहिणा।
दव्वत्थओ त्ति नेय, भावत्थय—कारणत्तेण ॥
श्री पचाशक शास्त्र—६—३

उक्त गाथा का नवागी टीकाकार पूज्यपाद श्री अभयदेव सूरिजी, जो विक्रम की बारहवी शताब्दि मे हुए, आप अर्थ-टीका करते हैं [मूल सस्कृत का हिन्दी मे] कि—

शास्त्रोक्त विधि पूर्वक किये हुए जिनमन्दिर निर्माण, जिन प्रतिमा निर्माण, जिन प्रतिमा की जिन मन्दिर मे प्रतिष्ठा, अष्टाह्निक महोत्सव रूप यात्रा, पुष्पादि से पूजा और स्तवन—स्तुति आदि गुणगान

स्वरूप अनुष्ठान सर्व विरति (चारित्र धर्म) रूप भावस्तव के कारण होने से द्रव्य स्तव (द्रव्य पूजा) है। [भावस्तव का कारण स्वरूप यह द्रव्यस्तव (पूजा) का तीर्थङ्कर भगवान ने भी काम-भोग की तरह निषेध नही किया है, अत द्रव्य स्तव भगवान को अभिप्रेत-अनुमत-इष्ट है]

चतुर्दश प्रमाण

चौदह पूर्वधर श्रुतकेवलज्ञानी श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज "श्री आवश्यक सूत्र" मे लिखते हैं कि—उदायन राजा की प्रभावती राणी ने जिन मन्दिर बनवाया और तीन काल भगवान की पूजा-अर्चना करती थी। यथा—

✲ ✲ ✲ अतेउर चेइयघर कारिय पभावईए ण्हातांति।
सझ अच्चेइ, अन्नया देवी णच्चइ राया वीणा वाएइ ॥✲✲

भावार्थ—प्रभावती राणी ने अपने अंतेपुर (रहने के महल) मे जिणघर यानी जिनमन्दिर बनवाया। प्रभावती राणी स्नान करके प्रभात-मध्यान्ह एव सायकाल तीन वक्त घर मे रहा जिनमन्दिर में अर्चा-पूजा करती थी, एकदा राणी प्रभावती (भगवान के सामने) नृत्य करती है और स्वय राजा वीणा बजाता है

पंचदश प्रमाण

भगवान श्री महावीर स्वामी के ग्यारह श्रमणोपासक [श्रावक] ने जिन प्रतिमा पूजी है। श्रावक प्रमुख श्री आनन्द श्रावक के विषय मे श्री उपासक दशाग सूत्र मे निम्न पाठ है—

✲ ✲ ✲ नो खलु मे भते ! कप्पइ अज्जप्पभिइयण अन्न उत्थिया वा अन्न उत्थिय देवयाणि वा अन्न उत्थिय परिग्गहियाइ "अरिहत चेइयाइ" वा वदित्तए वा नमसित्तए वा। —उव सूत्र

उक्त सूत्र की टीका करते हुए नवागी टीकाकार श्रीमद् अभयदेव सूरिजी महाराज लिखते हैं कि—

※ ※ ※ नो खलु इत्यादि नो खलु मम भदत ! हे भगवन् ! कल्पते युज्यते अद्य प्रभृति इत सम्यक्त्व-प्रतिपत्ति-दिनादारम्य निरतिचार-सम्यक्त्व परिपालनार्थं तद्यतनामाश्रित्य अन्नउत्थिएत्ति जैनयूथाद्यन्यद्यूथ सघान्तरं तीर्थान्तरमित्यर्थं तदस्ति येषा तेऽन्ययूथिका• चरकादि कुतीर्थिका तान् अन्ययूथिक दैवतानि हरि-हरादीनि अन्य यूथिक परिगृहितानि वा "अर्हच्चैत्यानि अर्हत्-प्रतिमा-लक्षणानि" यथा भौत परिगृहितानि वीरभद्र-महाकालादिनि वन्दितु वा अभिवादन कर्तुं नमस्यतु वा प्रणाम पूर्वक प्रशस्तध्वनिभि• गुणोत्कीर्तनं कर्तुम् ।

श्री उ सूत्र, प्रथमाध्ययने ※ ※ ※

भावार्थ—हे भगवन् ! मुझे आज से (सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद) निम्न कथित बातें न कल्पे, जिससे मैं (आनन्द श्रावक) निरतिचार सम्यग्दर्शन का पालन कर सकू । आज से लेकर मुझे जैन-सघ के अन्तर्गत अरिहत और अरिहत की प्रतिमा को छोडकर अन्य तीर्थी चरक आदि, अन्य तीर्थी के देव हरि-हरादि और अन्य तीर्थी के ग्रहण किये अरिहत के चैत्य अर्थात् जिन प्रतिमा को वदन करना, नमस्कार करना नही कल्पे ।

[शास्त्र पाठो मे जिनाज्ञा विपरीत या शास्त्रकर्ता महर्षियो के अभिप्राय के विपरीत कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छा मि दुक्कडम् ।]